Fortnightly per copy Rs. 5/- only

ओ३म्

3rd April 2016

आर्य जीवन
ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Date of Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month

आर्य समाज स्थापना दिवस के संदर्भ में

'ईश्वर अनादि काल से अनन्त काल तक सबका एकमात्र साथी'

मनुष्य जन्म व मरण धर्मा है परन्तु मनुष्य शरीर में निवास करने वाला जीवात्मा अजन्मा व अमर है। जीवात्मा अनादि व अनुत्पन्न होने के अविनाशी व अमर भी है। हमारे इस जन्म के माता–पिता, भाई–बहिन, सगे–संबंधी व इष्ट–मित्र आदि जन्म व उसके बाद हमसे जुड़ते हैं तथा उनकी व हमारी मृत्यु होने पर यह सभी सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। यह हम सबका अनुभव है और हमें लगता है कि इस मान्यता व सिद्धान्त पर किसी को कोई आपत्ति व आक्षेप नहीं है। क्या हमारा कोई स्थाई साथी भी है जो हमारे इस जन्म से पहले भी हमारे साथ रहता आया हो और मृत्यु के बाद भी रहेगा? अध्ययन व विचार करने पर ऐसा एक ही साथी ज्ञात होता है और वह है परमात्मा वा ईश्वर। ईश्वर भी इस ब्रह्माण्ड में अनादि, अनुत्पन्न, अजन्मा, नित्य, अविनाशी, अमर धर्म व गुणों वाली सत्ता है। यह सच्चिदानन्द (सत्य+चित्त+आनन्द) ईश्वर हर क्षण, हर पल, हर जन्म, हर युग में हमारा साथी, मित्र, माता–पिता, आचार्य व रक्षक रहा है व भविष्य में भी रहेगा।

ईश्वरीय ज्ञान वेदों में इन दोनों मित्रों को 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन्श्नन्नन्यो अभि चाकशीति। (ऋग्वेद 1/164/20)' कहा है जिसका अर्थ है कि ईश्वर व जीवात्मा दो सुन्दर पंख वाले पक्षी के समान हैं जो कि प्रकषति रूपी एक ही वक्ष पर बैठे हुए हैं। जीवात्मा इस वक्ष के फल खाकर इसमें फंसता है परन्तु ईश्वर फल नहीं खाता, वह जीवात्माओं के कर्मों का साक्षी और फल प्रदाता है। ईश्वर अजन्मा होने से जन्म नहीं लेता। इस कारण उसका भौतिक शरीर भी नहीं होता। मनुष्य के जन्म–मरण धर्मा होने से इसे पंचभौतिक शरीर की आवश्यकता होती है। संसार में यह तीसरा भौतिक पदार्थ प्रकषति के गुणों की विषम अवस्था है जो कि चेतनशून्य वा जड़ तत्व है जबकि ईश्वर व जीवात्मा दोनों ही चेतन तत्व हैं। जीवात्मा संख्या में अनन्त और ईश्वर एक है। ईश्वर ही अपने सनातन सखा जीवात्मा को सुख प्रदान करने के लिए इस सषष्टि की रचना व पालन करता है और जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार सुख–दुःख रूपी फल सहित जन्म–जन्मान्तर में भिन्न–भिन्न योनियों में जन्म देता है। ईश्वर व इसका स्वरूप कैसा है? ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सर्वातिसूक्ष्म, सषष्टिकर्ता, जीवों के कर्मों का साक्षी व फल प्रदाता है। जीवात्मा सत्य, चित्त, आनन्दरहित, अल्पशक्तिवान्, अनुत्पन्न, अनादि, ईश्वर से व्याप्य, सूक्ष्म, अजर, अमर, नित्य, ईश्वर की व्यवस्था से जन्म लेने व मष्त्यु को प्राप्त होने वाला, कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में परतन्त्र, वेदादि साहित्य का अध्ययन कर ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने वाला और योगादि साधना से ईश्वर का साक्षात्कार एवं मोक्ष की प्राप्ति करने आदि गुणों वाला है।

जीवात्मा व ईश्वर अनादि व नित्य हैं, इसका उल्लेख किया जा चुका है। इन गुणों के कारण जीवात्मा के अनन्त बार जन्म व मष्त्यु हो चुकी हैं। वह प्रायः निम्न, मध्यम व मनुष्य की उच्च सभी योनियों सहित अनेकानेक बार मोक्ष में भी जा चुका है। इन सभी जन्मों में उसका एकमात्र साथी व संगी ईश्वर ही रहा है जिसे वह वर्तमान भौतिक युग व मत–मतान्तरों के मिथ्या जाल में फंस कर उसको भुला हुआ है। जीवात्मा व ईश्वर के बीच जो आवरण है उसे काटने का एक ही उपाय है और वह है वेदाध्ययन और वेद व योग विधि से ईश्वरोपासना करना। योग की ईश्वरोपासना विधि में मनुष्य को पांच यम (अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), पांच नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय,

30-03-2016, Amar Ujala

धर्म और जाति के बीच दलित

पिछले दिनों दलित-मुस्लिम एवं ईसाइयों ने दिल्ली में रामलीला मैदान से जंतर-मंतर तक शांति मार्च निकाला था। उनकी मांग थी कि उन्हें भी दलित के रूप में सांविधानिक मान्यता प्राप्त हो और उन सभी लाभों को प्राप्त करने का हक मिले, जैसे दलित हिंदुओं को प्राप्त है। संविधान में सामाजिक और आर्थिक रूप से अतिवंचित समूह अथवा जाति को अनुसूचित जाति के रूप में उल्लेखित किया गया है। वैसे तो भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, किंतु इस मामले में सरकार ने धर्म के आधार पर भेदभाव का रास्ता अपनाया है। ऐसे सभी दलित, जो हिंदू, सिख और बौद्ध धर्म से अलग धर्म को मानने वाले हैं, वर्तमान में उन्हें अनुसूचित जाति से संबंधित लाभ नहीं मिल सकते, क्योंकि आजादी के बाद आए प्रेसिडेंशियल आर्डर (अनुसूचित जाति), 1950 में केवल हिंदू धर्म मानने वाले दलितों को ही अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया था। बाद में इसमें दलित सिखों एवं दलित बौद्धों को भी शामिल कर लिया गया। किंतु अब भी मुस्लिम, ईसाई, पारसी और जैन धर्म मानने वाले दलित, अनुसूचित जाति की इस सूची से बाहर हैं।

स्वामी अग्निवेश

लेख पर अपनी राय
हमें यहां भेजें
edit@amarujala.com

इसका मतलब है कि परोक्ष रूप से सरकार नागरिकों को कुछ विशेष धर्म मानने से मना कर रही है। यह संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्राप्त धार्मिक उपासना की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन है। वैदिक काल के बाद से ही जाति व्यवस्था हिंदू धर्म का अभिन्न अंग रही है। जाति व्यवस्था में व्यवसाय, खान-पान तथा पवित्रता-अपवित्रता और उच्चता-निम्नता का भाव जुड़ा है। व्यवसाय आधारित अपवित्रता की धारणा ने कुछ जातियों को हाशिये पर ढकेल दिया था। उच्च जातियों द्वारा उन पर तरह-तरह के प्रतिबंध आरोपित कर दिए गए थे। अस्पृश्यता के मूल में भी अपवित्र माने गए व्यवसाय करना ही है, जैसे-मांस व्यवसाय, मल-मूत्र साफ करना, श्मशान घाट संबंधी कार्य आदि। जाति संबंधी इन्हीं कुप्रथाओं ने समाज के एक बड़े तबके को मूलभूत इंसानी सुख-सुविधाओं से वंचित कर रखा था। हालांकि

भारतीय समाज में समय-समय पर जाति व्यवस्था का विरोध अवश्य हुआ। किंतु कुछ सुधारों के साथ जाति व्यवस्था अब भी बनी हुई है। इन्हीं सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने के लिए ही सांविधानिक प्रावधान किए गए थे।

जाति के इस भयानक रूप से छुटकारा पाने के प्रयास में कुछ समूहों ने धर्म परिवर्तन का सहारा लिया, पर अफसोस धर्म बदलने के बावजूद जाति संबंधी अयोग्यताएं बनी रहीं। इस्लाम, ईसाई, बौद्ध और सिख आदि धर्मों में एकता व समानता की सैद्धांतिक स्वीकृति के बावजूद जमीनी हकीकत कुछ और है। धर्म परिवर्तन करने से धर्म तो अवश्य बदला, पर उनके व्यवसाय, उनकी पहचान तथा सामाजिक स्तर में कोई परिवर्तन नहीं आया, जैसे-मेहतर, भंगी (मल-मूत्र साफ करने वाले), फकीर, हज्जाम (नाई), धोबी, मनिहार (घूम-घूमकर चूड़ी बेचने वाले), कसाब (कसाई), डेडूकला (काटन क्लीनर्स) आदि। सरकारी व अर्द्धसरकारी नौकरियों, व्यावसायिक शिक्षा, लोकसभा, विधानसभा आदि में इनका प्रतिनिधित्व न के बराबर दिखता है। चर्च तथा मस्जिदों में प्रवेश का अधिकार तो उन्हें मिला, पर सामाजिक समानता का नहीं। रोटी-बेटी के संबंधों में वही रूढ़िगत मान्यताएं इस्लाम व ईसाई समाज में भी देखने को मिली, जो हिंदू धर्म में थीं। इन धर्म परिवर्तित दलितों के लिए कब्रिस्तानों, इबादतगाहों में अलग स्थान निर्धारित कर दिए गए। उनको न तो खुदा मिला और न ही विसाले सनम।

अनुसूचित जाति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1935 के भारत सरकार अधिनियम में किया गया था। इससे पूर्व 1880 में जनगणना आयुक्त ने व्यवसाय के आधार पर 17 ऐसे समूहों को चिह्नित किया था, जिन पर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बताई गई थी। आजादी के बाद 1950 में आए प्रेसिडेंशियल ऑर्डर के पैरा तीन में पहली बार अनुसूचित जाति की व्याख्या में धर्म को शामिल किया गया। कहा गया- वैसे जाति अथवा समूह, समुदाय, जो हिंदू धर्म से अलग धर्म मानने वाले हों, को अनुसूचित जाति संबंधी संरक्षण प्राप्त नहीं होंगे। वर्ष 1956 में पुनः संशोधन द्वारा दलित सिखों को तथा 1990 में दलित बौद्धों को इसमें जगह दी गई और कहा गया कि ये धर्म भारतीय भूमि में ही विकसित हुए हैं तथा हिंदू धर्म के ही विस्तृत रूप हैं, इसलिए इनके दलित समूहों को अनुसूचित जाति का दर्जा दिया जाना न्यायोचित है। जबकि सवाल यहां जाति का है और उससे जुड़ी सामाजिक अयोग्यता का है, न कि धर्म का। अतः प्रेसिडेंशियल ऑर्डर का पैरा तीन संविधान के मौलिक अधिकार विधि के समक्ष समानता तथा अवसर की समानता का उल्लंघन है और अतार्किक भी।

उक्त आदेश के पैरा तीन की सांविधानिक वैधता को चुनौती देने के लिए एक याचिका भी उच्चतम न्यायालय में दायर की गई थी और इसे समाप्त करने की अपील की गई। इसी मामले के निदान हेतु यूपीए-एक ने रंगनाथ मिश्रा की अध्यक्षता में एक धार्मिक भाषायी आयोग का गठन किया था। आयोग ने स्पष्ट रूप से कहा था कि इस पैरा को उचित कार्यवाही के जरिये पूर्णरूप से हटा दिया जाना चाहिए। अनुसूचित जनजाति की ही तरह अनुसूचित जाति का दर्जा भी पूरी तरह से धर्म निरपेक्ष हो और इसे धर्म से अलग कर देना चाहिए। इसी तरह 2010 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने भी इन सुझावों की पुष्टि की और पैरा तीन को हटाने की हिमायत की थी। सांविधानिक मनाही के बावजूद जाति व्यवस्था भारत में सभी धर्मों का अभिन्न अंग है। मुस्लिम व ईसाई समाज भी इससे अछूता नहीं है। संसद से मेरा विनम्रतापूर्वक आग्रह है कि वह अनुसूचित जाति संबंधी धार्मिक भेदभावों को यथाशीघ्र समाप्त करने के लिए कदम उठाए और मुस्लिम और ईसाई दलितों को भी अनुसूचित जाति के तहत संरक्षण मिले। समावेशी विकास तभी संभव है, जब हरेक नागरिक को विकास के समान अवसर मिले।

Date: 03-04-2016

आर्य समाज का स्थापना दिवस

चैत्र सुदी प्रतिपदा

आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया ।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया ।
डाला सुधार वारि बढ़ी बेल मेल की ।
देखो समाज फूल फबीले खिला गया ।।

-महाकवि शंकर कृत

विक्रम की १९ वीं शताब्दी के वृद्ध भारत में वैदिक धर्म, भारतीय सभ्यता और समाज की अभूतपूर्व कल्पनातीत तथा विलक्षण अवस्था हो गई थी । एक ओर शुद्ध, सनातन, सरल वैदिक धर्म की पवित्र मन्दाकिनी सैकड़ों युगों के असंख्य समय में प्रवाहित रहकर कपोल-कल्पित, नाना नवीन मतों के आडम्बरों से उसी प्रकार कलुषित वन गई थी, जिस प्रकार गंगोत्री से चली हुई भागीरथी की पुण्य सलिला, विशुद्ध धारा विस्तृत विविध भूभागों में भ्रमणा करके और मलीन जलवाली अनेक नदियों से मिल कर गंगा सागर में गदली और गर्हित हो गई हैं । सनातन वैदिक धर्म के ज्ञान, कर्म और उपासना के तीनों कांडों का स्थान मिथ्याविश्वास, तान्त्रिक जादू टोने और पूजा ने ले लिया था । परम-तत्त्वविवेचन के स्थान में मिथ्या विश्वासमूलक विविध मतवाद मनुष्यों के विचारों पर अधिकार पा गये थे। मनुष्य, वैदिक कर्मकाण्ड के सारभूत पञ्चमहायज्ञों को त्यागकर मारणा, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की सिद्धि में अपने अमूल्य समय को बिताने लगे थे । सर्वव्यापक परमपिता की उपासना से विमुख बन कर कपोल कल्पित आधुनिक देवी-देवताों की पूजा में तत्पर थे । देवस्थान भंग, चरस आदि मादक द्रव्यों से उन्मत्त, दुराचारी, निरक्षर भट्टाचार्य पुजारियों मादक द्रव्यों से ?उन्मत्त, दुराचारी, निरक्षर भट्टाचार्य पुजारियों (पूजा के शत्रुओं) से भरे रहते थे। जनता आचार्य आदि सच्चे तीर्थों को भूल कर जल-स्थल आदि को ही तीर्थ मान बैठी तीर्थों को भूलकर जल-स्थल आदि को ही तीर्थ मान बैठी थी । वैदिक वर्णाव्यवस्था बिल्कुल लुप्त हो गई थीं । उस के स्थान में जन्ममात्र के गर्वित, गुण-कर्म से रहित पुरुषाधम दुरह्मणादि वर्णा के अभिमानी वन गये थे । ब्रह्मचारी और संन्यासी नाममात्र को शेष रह गये थे, परन्तु उन का वेश धारण करके लाखों विद्याशून्य, अकर्मण्य, वकवृत्ति और विडालवृत्ति बने हुए वञ्चकजन इस वसुन्धरा के भार को बढ़ा रहे थे और श्रद्धालु प्रजा को दिन-दहाड़े लूट रहे थे । सच्चे योगियों का स्वरूप तो योगशास्त्र में ही रह गया था किन्तु उन के नाम को लेकर भिक्षा से पापी पेट को भरने वाले जोगियों की एक पृथक् जाति (समुदाय) हो वन गई थी । सर्वमान्य आचार्य पदवी मृतकों का माल उड़ाने वाले अचारजों को मिल गई थी । अन्ततः प्रायः सारे के सारे वैदिक और आर्षप्रयोगों और नामों का यथार्थस्वरूप और प्रयोजन उलट-पुलट हो गया था । सनातन वैदिक धर्म का कलेवर ही बदल गया था । श्रुतियों का नाम ही सुनाई देता था, उन का स्वरूप लुप्तप्राय हो गया था. जनता में यहां तक मूर्खता फैल गई थी कि वे अन्य देवताओं के समान वेदों की भी कोई देहधारी देवता समझने लगे थे । उनकी मूर्तियों तक की कल्पना हो गई थी । वेदों के प्रमाणों के स्थान में अनेक आधुनिक ग्रन्थ और संस्कृत के श्लोक और वाक्यमात्र तक प्रमाण माने जाने लगे थे । धर्म रूढ़ियों (रस्म-रिवाज) का ही नाम रह गया था या यूं कहिए कि सर्व रूढ़ियों का ही राज्य था ।

दूसरी ओर योरुप से उठी हुई पाश्चात्य सभ्यता की प्रबल पछवा आंधी प्राचीन तथा पूर्वीय सभ्यता का सव कुछ उड़ा ले जाकर उस को तितर-बितर कर देने को धमकी दे रही थी । ''यथा राजा तथा प्रजाः'' की काहवते के अनुसार पराजित भारतीय प्रजा अपने गौरांग प्रभुओं का रहन-सहन और उठने-बैठने तक की नकल करने में अपना गौरव समझती थी । वह उन को देश, भूषा, आहार के अनुकरणा से ही सन्तुष्ट न थी, प्रत्युत प्रत्येक विषय में उन की विचार परम्परा का भी पीछा करती थी । सहस्त्रों ग्रन्थों से संस्थापित और संसद्धि सत्य भी पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाणों के बिना सिद्धान्त नहीं माने जाते थे । भूगोल, खगील, रसायन तथा पदार्थ विज्ञान आदि सारी विद्योओं तथा संगीत, शिल्प, स्थापत्य, चित्रण आदि समस्त कलाओं के आविष्कर्त्ता भी पाश्चात्य पुरुष ही समझे जाते थे । पाश्चात्य सभ्यता के ही प्रकाश में समस्त विषयों का अवलोकन किया जाता था । उन के ही हेतुवाद वा तर्कशैली से धर्मा-धर्म की भी परीक्षा की जाती थी । शिखा, सूत्र, आचमन, मार्जन आदि सारे धर्मकृत्य क्यों ! और कैसे ! की कसौटीपर कसे जाते थे । सारे धर्म-कर्मों का निदान वा मूल ऐहिक वा सांसारिक सुख ही माना जाता था ।

जहां एक ओर ''अविद्यों वा सविद्यो वा ब्रह्मणो मामकी तनुः'' इस नाममात्र के ब्रह्मणों के वाक्य पर श्रद्धा रखने वाले, रूढ़ियों के परम उपासक, पुराने आचार-विचार के लोग किसी भी संस्कृत के ग्रन्थ वा वाक्यको प्रत्येक प्रचलित कुप्रथा और मूर्खता का पोषक पुष्ट प्रमाण मानते थे, वहां पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षित और आलोकित नवयुवक तर्करहित ब्रह्म वाक्य को भी सुनने के लिए तैयार न थे । परिणामतः नवशिक्षित नई पौध के लोग निरीश्वरवादी, संदेहवादी वा भोगवादी बनकर प्राचीन सभ्यता और सनातन धर्म से विल्कुल विमुख हो रहे थे । वे अपने पूर्व पुरुषों को वृद्ध मूर्ख (old fool) कह कर हंसते थे ।

उच्चजात्याभिमानी हिन्दू लोगों में कुछ तो धन-कलत्र के लोभ से और कुछ पुराणा ग्रन्थों की असंवद्ध कथाओं तथा हिन्दू रूढ़ियों की कठोरता से उद्विग्न होकर ईसाई आदि विधर्मी बनते जाते थे । नीच कही जाने वाली जातों के जन उच्चम्मन्य हिन्दुओं के तिरस्कार, अत्याचार और अमानुषिक व्यवहार से ममहित होकर ईसाई पादरियों के प्रभाव में आकर दिनों-दिन हिन्दू समुदाय का कलेवर क्षीणा और ईसाई मत का शरीर पीन वना रहे थे और प्रातःस्मरणीय श्री राम और कृष्णा की न्दिा से निज जिह्वा को अपवित्र करते थे ।

दूसरे ओर बहुत से हिन्दू नित्यप्रति मुसलमानों के फन्दे में फंसते थे । देव वाग्री वा आर्य भाषा (हिन्दी) का पटन प्रायः पुरोहितों का ही काम रह गया था । अन्य व्यवसायी वा कारवारी लोग महा महिमामय मौलवियों की पदचर्या और फारसी भाषा की आराधना को ही अपना अहोभाग्य और गौरववर्धक समझते थे । उस समय जालसाजी की जड़ और सर्पाकार फारसी लिपि से अनभिज्ञजनों को सभ्यता की परिधि से बाहर समझा जाता था । सर्वगुणा आगारी देवनागरी की ''हिन्दगी'' कहकर न्दिा की जाती थी । मौलवियों के अहर्निश के सहवास से फालसी पढ़े हुए कई पुरुष तो खुल्लमखुल्ला मुसलमानी मत से दीक्षित हो जाते थे और शेष सारे आचार-विचारों से मुसलमान अवश्य बन जाते थे । इसलिए ''फारसी पढ़ा आधा मुसलमान'' की कहावत

प्रचलित हो गई थी। उन दिनों वैदिक धर्म का विकृत रूप 'हिन्दूमत' ऐसा कच्चा धागा वन रहा था कि उस को जो चाहता था एक झटके से तोड़ सकता था। वह ईसाई वा मुसलमान के छुए हुए जलमात्र के पान से सदा के लिए विदा हो जाता था और इसलिए हिन्दूसमुदाय ईसाई मुसलमानों के लिए सुलभ भोजन वा स्वादु ग्रास (तर लुकमा) वन रहा था। फलतः गो और ब्रह्मण के रक्षकों के समूह का प्रतिदिन ह्रास हो रहा था।

इस प्रकार नित्य प्रति क्षीणा-कलेवरा आर्य जाति मृत्यु के मुख में जा रही थी। प्राचीन आर्यसभ्यता पग-पग पर पराभव पाकर अपने प्राचीन वभव और महमिा को खो रही थी। जो आर्यजाति और वैदिक धर्म ९०० वर्ष तक के मुसलमानी अत्याचारपूरित शासन और तलवार से नष्ट न हो सका था, वह अव पाश्चात्यों के सम्मोहनास्त्र से महानिद्रा में निमग्न होने को उद्यत था। परन्तु सब सभ्यताओं की आदि जननी आर्यसभ्यता और सब धर्मों के आदिस्त्रोत वैदिकधर्म की उस प्रकार पशुतुल्य मृत्यु करुणा-वरुणालय परमपिता को अभिमत न थी, इसलिए दयामय ने असीम दया से निज नित्यव्यवस्थानुसार इस धर्मसंकट के समय धर्म की रक्षा के लिए दयामूर्ति और आनन्दराशि ऋषि दयानन्द का प्रादुभवि भव्य भारत में किया।

ऋषि दयानन्द की उज्ज्वल जीवनी की पुण्य-गाथा एक पृथक् विषय है। यहां उस का वर्णन प्रकरणान्तर होगा। किसा प्रकार ऋषि दयानन्द ने सब कुछ त्याग कर सत्य संन्यासी बन कर पूर्णतः सत्य विद्याश्रों के अभ्यास और भारत के कोने-कोने में पिरभ्रमण के पश्चात् इस देश की पतित अवस्था का निरीक्षण किया और उस से द्रवीभूत होकर वैदिक धर्म कु पुनरुद्धारार्थ और संसार मात्र के परोपकारार्थ आर्य समाज की स्थापना को, ये बातें वेद के नाम लेवा प्रायः सभी पुरुषों को विदित हैं। इस समय उसी आर्यसमाज की स्थापना का विषय प्रस्तुत है।

ऋषि दयानन्द ने गुरु-गवेषणा और अतुल अन्वेषणा के पश्चात् जिस सनातन वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना की थी। उन के लगातार प्रचार के लिए उन्होंने वहुत से श्रद्धालु धार्मिक पुरुषों की सहायता तथा राज्य मान्य राजा श्री पानाचन्द आनन्द जी की आयोजना के अनुसार भारत की प्रसिद्ध समृद्धिशालिनी समुद्रतीरवर्तिनी मुम्बापुरी (बम्बई) गिरगांव में डा० मानिकचन्द जी की वाटिका में चैत्र सुदि १ संवत् १९३२ विक्रमीय, १७८७ को प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। उस के सन् १८७५ ई० को प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। उस के २८ नियम सर्वसम्मति से निर्धारित किये गये। इन्हीं नियमों में ऋषि दयानन्द की आत्मा का प्रतिबिंब और आर्यसमाज का उद्दश्य वर्तमान था। आगे चलकर लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के समय इन्हीं २८ नियमों को संक्षिप्त करके संप्रति प्रचलित आर्यसमाज के निम्नलिखित १० नियमों का रूप दिया गया। बंबई आर्यसमाज के नियमों की संख्या के अधिक होने का यह कारण था कि उन में आर्यसमाज के कार्यनिर्वाहक उपनियम भी सम्मिलित थे। लाहौर में उपनियमों को पृथक् कर के मूलसिद्धान्त रूप नियमों को ही मुख्य दश नियमों के रूप में प्रचलित किया गया।

यहां आर्यसमाज के दश नियमों को व्याख्या के लिए स्थान नहीं है, पर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि आर्यसमाज की स्थापना ऐसे सर्वव्यापक और सर्वहितैषी नियमों पर हुई थी कि संसार के सब राष्ट्रों और जातियों के निवासी उन पर चलकर सर्वदा अपनी उन्नति कर सकते हैं। आर्यसमाज का संगठन भी दूरदर्शितापूर्वक ऐसी प्रजासत्तात्मक परिपाटी पर किया गया है कि उस से प्रत्येक राष्ट्र में, सब प्रकार की शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम और सर्वसुखदायक प्रजासत्तात्मक शासन का विकास और अभ्यास (Training) पूर्ण रूप से हो सकते हैं। आर्यसमाज के संगठन में उस के संस्थापक महर्षि ने अपने व्यक्ति तक के लिए कोई विशेष स्थान वा पद नहीं रक्खा था, वे अपने आप को भी आर्यसमाज का एक 'साधारण सदस्य' समझते थे। एक बार लाहौर आर्यसमाज ने जब उन से एक अधिवेशन का प्रधान पद स्वीकार करने की प्रार्थना की थी तो उन्होंने यही उत्तर दिया था कि आप की समाज का प्रधान विवद्यमान ही है, वही अपना कर्त्तव्य पालन करे। एक साधारण सदस्य के रूप में मैं भी आपके कार्य में योग दे सकता हूं। आर्य समाज ने भारत के प्रजासत्तात्मक शासन प्रणाली के प्रचार में वहुत कुछ सहायता प्रदान की है। उस ने भारत के अन्य सम्प्रदायों और मतों को भी संगठित होकर काम करने की रीति सिखलाई है। और यहां के कई सम्प्रदाय संगठन अब आर्य समाज से भी आगे जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द के कई लेखों के देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने आर्यसमाज से संसार के उपकार और देशदेशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार की बड़ी-बड़ी आशाएं बांधी थीं। उन्होंने अपनी कोई गद्दी आदि न बनाकर आर्यसमाज को ही अपना उत्तराधिकारी माना था और उन के उद्देश्य के साफल्य की सारी आशाएं आर्य समाज में ही केन्द्रित कीं। महर्षि के स्वानामधन्य सच्चे अनुयायी इन आशाओं की पूर्ति के लिए प्राणापणा से पूरा यत्न कर रहे हैं।

आर्य समाज से जो आशाएं की गई थीं उन का कुछ दिगदर्शन और आभास अमरीका के एक दार्शनिक डाक्टर एंड्रयू जेकसन डेविस (Dr. Andrew Jackson Davis) की निम्नलिखित कवितामय मनोहर पंक्तियों से भली प्रकार हो सकता है-

डा० एन्ड्रयू जैक्सन डेविस के उद्गारों का अनुवाद

"मैं एक ऐसी अग्नि को देखता हूँ जो सर्वव्यापक है, वह अप्रमेय प्रेम की अग्नि है, जो सर्वविद्वेष को भस्मसात् करने के लिए प्रज्वलित हो रही है और सर्ववस्तुजात को पवित्र बनाने के लिए पिघला रही है। अमरीका के प्रशस्त क्षेत्रों, अफरीका के बड़े स्थलों एशिया के शाश्वतिक पर्वतों योरुप के विशाल राज्यों और राष्ट्रों में सर्वनाशन सर्वपावन, इस पाव की प्रज्वलित ज्वलाएँ मुझे दिखाई दे रही हैं। प्रथम इस अग्नि की ध्वनि निम्नतम स्थानों में सुनाई देती है, मनुष्य उस को अपने सुख और उन्नति के लिए प्रकाशित करता है। क्योंकि केवल मनुष्य ही ऐसा पार्थिव प्राणी है, जो अग्नि को प्रज्वलित करके उसी प्रकार स्थिर रख सकता, है। जैसा कि केवल वह ही (मनुष्य ही) ध्वनि वा शब्दों के जन्म देकर स्थिर रख सकता है। इसलिए मनुष्य ही अपने गृहों में सब से प्रथम नारकीय अग्नियों को प्रज्वलित करता है। (द्वेषों को भड़काना है) और वही सर्वप्रथम स्वर्ग से प्रोमीथस* की उस अग्नि को प्राप्त करने वाला और बढ़ा कर रखने वाला है जिस से कि पातालीय (नारकीय) अन्धकारपूर्ण गृह प्रेम से पवित्र और मेघा से प्रकाशित हो सकते हैं।

(प्रोमीथस यूनानियों का एक देवता था जिस ने उन के विश्वासानुसार सर्वप्रथम स्वर्ग से अग्नि को चुराकर मनुष्य को प्रदान किया और उस का प्रयोग सिखलाया था।)

...शेष पृ. ६ पर

महर्षि दयानन्द जी और अन्य मत-मतान्तर

-कामता प्रसाद मिश्र

वेदोद्धारक, युगदृष्टा तथा महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक कुरीतियों, बुराइयों तथा विकृतियों से जूझ रहा था। समाज में अंधविश्वास, छुआछूत, ऊँच नीच के भेदभाव, अशिक्षा, अज्ञानता जैसी बुराइयाँ समाज को खोखला बना रही तीं। वहीं धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड, आडम्बर, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, चेला चेली मूड़ना, मठों की स्थापना कर असत्य को सत्य, अज्ञान को ज्ञान, अपने को ईश्वर का अवतार बताना, तो कुछ लोग ईश्वर का भेजा दूत अपने को सिद्ध करने में लगे हुए थे। दसरी ओर भारत अंग्रेजी शासन की क्रूर, निर्मम अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न देशभक्त निर्दोषों को कठोर दण्ड या कारावास देने की घोर पराधीनता का शिकार हो गया था। आर्थिक रूप से भारतीय समाज निर्धतना, गरीबी, मुखमरी तथा विपन्नता का भयंकर असहनीय दुःख भोग रहा था। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द जी ने देश की इन समस्याओं को निकट से देखा, भलीभाँति समझा तथा गहन अध्ययन किया। उनकी आत्मा तथा मस्तिष्क को भारी आघात लगा। उन्होंने इन सम्पूर्ण समस्याओं को भारत से समूल नष्ट करने का संकल्प लिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वैदिक सिद्धानतों, मान्यताओं तथा विचारों के आधार पर भारत को एत सम्पन्न, शिक्षित, वैदिक, वैज्ञानिक, एवं शक्तिसम्पन्न स्वस्थ राष्ट्र निर्माण करने का व्रत लिया। वह जानते थे कि भारत वर्ष जब तक पराधीनता के भीषण कुचक्र से मुक्त होकर 'स्वराज्य' प्राप्त नहीं करता तब तक इसका सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजैनैतिक उद्धार नहीं हो सकता। महर्षि ने पराधीनता को इसीलिए नरक तथा स्वतंत्रता को स्वर्ग बताया।

महर्षि दयानन्द जी ने सम्पूर्ण अवैदिक सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा विचारों को भारतीय समाज के लिए अभिशाप बताया। उन्होंने नारा दिया 'वेद की ओर लौटो' तभी सर्वागीण उन्नति सम्भव है। तभी हम ईसाइयों तथा इस्लाम के धर्मांतरण जैसे षड्यंत्र को असफल कर सकेंगे। उन्होंने "कृण्वन्तोविश्वमार्यम" वेद सन्देश को आधार बनाकर विश्व के सम्पूर्ण मानव को श्रेष्ठ, सदाचारी विद्वान तथा मनीषी बनने की प्रेरणा दी। महर्षि महान क्रान्तिकारी विचारक दर्शनिक तथा राष्ट्र भक्त थे इसी कारण उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति की ज्वाला जलायी जिससे उनके समाज सुधार, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों से समग्र क्षेत्रों में फैली विकृतियाँ भस्मीभूत होती चली गई। महर्षि ने यह सिद्ध कर दिखाया कि वैदिक धर्म ही सत्य सिद्धान्तों पर आधारित है। वैदिक धर्म ही विश्व का सबसे प्राचीनतम् धर्म है 'इसी से ही अन्य मतमतान्तरों के निर्माताओं ने सत्य विचारों को अपने मत में सम्मिलित किया है। विश्व के इतिहास अवलोकन से ज्ञात होता है कि महाभारत काल तक केवल एक ही धर्म था और वह था 'वैदिक धर्म'।

महर्षि दयानन्द जी ने वेदों का भाष्य प्राचीन ऋषियों यास्काचार्य आदि को आधार मान कर वैज्ञानिक एवं युक्ति संगत भाष्य किया। वेद के गौरव को विश्व पटल पर पुनः प्रतिष्ठित किया। वेदों के विषय में फैली भ्राँतियों को समूल नष्ट किया। वेदों को जहाँ पाश्चात्य वेदभाष्यकार गड़रियों का गीत बताते वहीं भारतीय वेद भाष्यकार कर्मकाण्ड और जादू-टोना का ग्रंथ कहते थे। महर्षि ने सभी प्रकार का भ्रमोच्छेदन कर निरुक्त तथा निघन्टु के आधार पर वेद का वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण भाष्य करके सिद्ध कर दिया कि वेद ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है। उन्होंने घोषणा की कि ए संसार के लोगो यदि तुम अपने जीवन को सुखी और शान्तिमय बनाना चाहते हो तो केवल वेदों को अपनाओ क्योंकि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं। अन्य मतमतान्तरों की साम्प्रयादिक पुस्तकें स्वार्थी लोगों ने बनायी हैं वे ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकतीं। आज संसार में जितने भी मतमतान्तर हैं वह महाभारत काल के पश्चात् जन्मे और फैले। विश्व के जानेमाने विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि 'ऋग्वेदादि' ही सबसे प्राचीनतम् ग्रंथ हैं। यह स्वतः है कि वैदिक धर्म तथा वेदज्ञान पृथ्वी पर सृष्टि के आरम्भ से हैं।

वैदिक धर्म के पश्चात् जो मतमतान्तर पैदा हुए अब हम उनका मुख्य-मुख्य मतों का संक्षेप में, कि कौन मत कब चला किसने चलाया और क्यों चला पर प्रकाश डालते हैं।

सर्वप्रथम हम "पारसी मत' को देखते हैं। इस मत को चले लगभग साढ़े चार हजार वर्ष हुए, इस मत के संस्थापक 'श्री जरथुस्त्र' महोदय थे जिन्होंने "जिन्दावेश्ता" नामक धर्म ग्रंथ की रचना की।

महाभारत काल के पश्चात् दूसरा यहूदी मत चला जिसे चले लगभग चार हजार वर्ष हुए 'हजरत इब्राहीम' जिनकी कथा बाइबिल में दी गई है, इस मत के संस्थापक हुए। परन्तु उनकी विचार धाराओं को लेकर 'हजरत मूसा' ने यहूदी मत को विस्तार दिया, 'बाइबिल' की पुरानी पुस्तक ही उनका धर्म ग्रंथ है।

लगभग ढाई हजार वर्ष हुए बौद्धमत तथा जैनमत चला। इसके संस्थापक क्रमशः महात्मा बुद्ध तथा महावीर स्वामी थे। इस मत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' तथा जातक नाम से जाने जाते हैं। यह अनीश्वरवादी मत हैं। 'कन्फ्यूशियस' तथा 'ताओ' मत भी इन्हीं मतों के समकालीन हैं।

लगभग दो हजार वर्ष हुए 'ईसाई मत' का पादुर्भाव हुआ। इस मत के चलाने वाले 'ईशा मसीह' थे। इनका धर्मग्रंथ 'बाइबिल' नाम से प्रसिद्ध है। हजरत ईसामसीह फिलिस्तीन नामक देश में जेरुसलम नगर में उत्पन्न हुए थे। इसीलिए जेरुसलम ईसाइयों का धर्म स्थान या तीर्थ कहा जाता है। ईस्‌ वी सन् जो आज प्चलित है उन्हीं के नाम पर उनके समर्थकों ने चलाया।

आज से लगभग साढ़े चौदह सौ वर्ष हुए इस्लाम मत की स्थापना हजरत मोहम्मद साहब ने की। उनका जन्म अरब देश में हुआ और अरब में ही इस मत की स्थापना कर अरबी भाषा में "कुरान शरीफ" नामक धर्म ग्रंथ की रचना की। जो आज भी इस्लाम मतावलम्बियों का पवित्र दर्मग्रंथ है।

लगभग पाँच सौ वर्ष व्यतीत हुए गुरु नानक देव ने सिक्ख मत की स्थापना की। यह मत यद्यापि वैदिक धर्म (हिन्दू धर्म) के रक्षार्थ स्थापित किया गया क्योंकि हिन्दू धर्म पर चारों तरफ से हमले हो रहे थे परन्तु आज सिक्ख मत भी साम्प्रदायकि मत का रूप धारण कर लिया है। इस मत का 'गुरुग्रंथ साहब' धर्म ग्रंथ बन गया। जिससें कबीर, गुरुनानक, आदि संतों के भजन संग्रहीत हैं।

उपर्युक्त मतों के पश्चात् और भी अनेक मत मतान्तरों का जन्म होता जा रहा है जो अवैदिक विचार धाराओं को अपने स्वार्थ और ख्याति में जन्म देते जा रहे हैं जैसे-पौराणिक मत, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, राधास्वामी मत, देव समाज, मुनि समाज, हंसामत, ब्रह्मकुमारी मत, गायत्रीपरिवार, आसाराम मत, रामपाल, निर्मल बाबा जैसे आदि-आदि मत

मतान्तर कुकुरमुत्ते के समान फैलते जा रहे हैं । इन मतों के चले दो सौ वर्ष के अन्दर ही हुए हैं जो पूर्ण रूपेण वेद विरुद्ध हैं तथा तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते । यह समाज में अंधविश्वास, पाखण्ड, आडम्बर तथा अज्ञानता फैला कर मान समाज को अज्ञानता के अंधकार में ढकेल रहे हैं । समाज के लोगों का शोषण करना तथा अँधविश्वास फैलाना ही इनका प्रमुख कार्य है ।

वैदिक धर्म सृष्टि के आरम्भ से ही चला आ रहा है । उसे एक अरब छियान्नवे करोड़ आठ लाख तिरपन हजार एक सौ सोलह वर्ष व्यतीत हो गये हैं । वैदिक धर्म इन मतमतान्तरों से सबसे प्राचीन है जो वैज्ञानिक, युक्तिसंगत, बुद्धि संगत तथा मानवता का पूर्ण रूपेण कल्याण करने वाला है । वैदिक धर्म के धर्म ग्रंथ 'वेद' हैं जो ईश्वर की वाणी है, ईश्वर नित्य है उसकी वाणी वेद भी नित्य है । वेद ज्ञान परमेश्वर का आदेश, उपदेश तथा संदेश है, वेद सम्पूर्ण विश्व के मानव के लिए है, उसे सभी को पढ़ने का अधिकार है । वेद ज्ञान ही आज के जीवन और जगत को विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व एवं मानवता की शिक्षा तथा प्रेरणा दे सकते हैं । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने घोषणा की कि ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है'' । इस सत्य को स्थापित करने के कारण महर्षि सदा-सदा के लिए अमर रहेंगे ।

महर्षि की दृष्टि दूरगामी थी । उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए 'आर्य समाज' की स्थापना की । कि आर्य समाज संस्था वेद एवं वेदानुकूल सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का प्रचार प्रसार करे तथा अवैदिक एवं अवैज्ञानिक सिद्धान्तों, विचारों तथा मान्यताओं को जड़ से अखाड़ फेंके । महर्षि ने सत्यासत्य के बोध कराने के लिए ''सथ्यार्थप्रकाश'' तथा वेदों के यथार्थ स्वरूप को जानने तथा समझने के लिए ''ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका'' ग्रथों की रचना की । जो वेद के गंम्भीर वज्ञानिक एवं दार्शनिक रहस्य उलझे हुए थे उक्त ग्रंथों के अध्ययन से सब का सरलता से समाधान होता है । वेदकाल से जिसे हम भारत कहते हैं इसका नाम एंव पहचान 'आर्यावर्त' नाम से था । यहाँ को निवासी आर्य तथा उनकी भाषा आर्य भाषा थी । जिसे हम देववाणी या गीर्वाणवाणी कहते हैं वह आर्यावर्त की सर्वसाधारण लोगों की भाषा थी ।

वैदिक धर्म सब मतमतान्तरों का आदि स्रोत है । जो भी अच्छाइयाँ सब मतमतान्तरों में पाई जाती हैं वे सब वैदिक धर्म से ही गृहीत हैं । पारसी मत में अग्निपूजन, गौभक्ति और पवित्र सूत्र धारण की प्रथा वैदिक धर्म से लिया गया है । यहूदी मत की जो भी अच्छी विचारधाराएं हैं वे वैदिक धर्म की ही हैं । जैनों के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष तप और स्वाध्याय ये नौ सिद्धान्त वैदिक धर्म से ही लिए गये हैं । बौद्धों का पंचशील सिद्धान्त वैदिक धर्म की देन है । ईसाई मत के कई सिद्धान्त बौद्धों से लिए गये हैं । इस्लाम का एकेश्वरवाद तो वैदिक धर्म की ही देन है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सभी मत वैदिक धर्म के आंशिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि वैदिक धर्म सृष्टि क्रम के अनुकूल है । यह चमत्कार तथा जगत मिथ्यावाद में विश्वास नहीं करता । वेद सम्पूर्ण मानवमात्र के लिए हैं तथा वेदों में जो शिक्षा दी गई है वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक तथा सार्वत्रिक है । वह देश और काल से परे है । वैदिक धर्म समन्वय प्रधान धर्म है समन्वय वहाँ होता है जहाँ अतिवादिता न हो । वैदिक धर्म आस्तिक धर्म है यह ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास रखता है । इसमें ईश्वर की सर्वव्यापकता, सार्वज्ञता, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी और दयालुता सम्बंधी धारणाएँ अन्य मतों से भिन्न हैं । वैदिक धर्म की मान्यता है कि ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग योगाभ्यास है । आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का कोई अन्य मार्ग नहीं है । यह जीवों को ईश्वर का अंश नहीं स्वीकार करता । महर्षि वैदिक धर्म की मान्यताओं के आधार पर जीवात्मा को कर्म करने में स्वतंतत्र और फलभोग में परतंत्र मानते हैं तथा आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं परन्तु अन्य मत आत्मा को नित्य मान कर भी आवागमन को स्वीकार नहीं करते । वैदिक धर्म की मान्यता यह है कि ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष है । महर्षि ने वेद के आधार पर यह सिद्ध किया है कि जीव मोक्ष के पश्चात् पुनः जन्म को प्राप्त करता है । महर्षि दयानन्द जी ने वेदों के आधार पर बताया कि परमात्मा, आत्मा तथा प्रकृति तीन अनादि सत्तायें हैं । परमात्मा सृष्टि का रचयिता है वह आत्माओं को कर्म करने के लिए संसार का निर्माण करता है और प्रकृति से सृष्टि भी रचना करता है । इस भाँति महर्षि दयानन्द जी ने समस्त जीवों के कल्याणार्थ वेद विचारों को श्रेष्ठ बताया ।

...पृ.४ का शेष

इस अनन्त अग्नि को, जो कि निश्चय रूप से संसार भर के राज्यों साम्राज्यों और शासन सम्बन्धी दोषों का सामना करेगी (पिवला डालेगी), देखकर मैं अतीव हर्षित हो रहा हूं, और जाज्वल्यमान उत्साह के साथ जीवन धारणा कर रहा हूं । सब उच्चतम पर्वत जल उठेंगे । उपत्यका के सारे सुन्दर नगर नष्ट हो जायेंगे । मनोहर गृह और प्रेमलुप्त हृदय पिघल कर एक हो जायेंगे और सूर्य की उज्ज्वल पाप संम्मिश्रित एक होकर अन्तर्धान हो जायेगे ।

अनन्त उन्नति की विद्युत् से मनुष्य का हृदय विक्षुब्ध है । आज केवल उस के स्फुलिंग (चिनगारियां) आकाश को ओर उड़ रहे हैं । वाग्मियों, कवियों और पवित्र पुस्तक प्रणोताओं के मनोभावों के रूप में उस की लपकती हुई ज्वालाएं यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो रही हैं । सनातन आर्य धर्म को उस की आद्य पवित्र अवस्था को प्राप्त करने के लिए आर्यसमाज नामक अग्निकुण्ड में इस अग्नि का आधान हुआ था और वह भारत में ईश्वर के प्रकाशप्राप्त (लब्धज्योति) पुत्र दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रादुर्भत और प्रजवलित हुई थी । ईश्वरीय ज्ञान को यह अग्नि उस से (दयानन्द से) पौरुष्य विचारों को भूमि (भारतवर्ष) को बहुत-सी उच्च और उज्ज्वल आत्माओं को प्राप्त हुई । यह सर्वनाशक अग्नि सब और ऐसी प्रचण्डता से प्रज्वलित थी कि जिस का ध्यान उस के प्रथम प्रकाशक दयानन्द को भी न आया था । हिन्दू और मुसलमान मिलकर इस अग्नि को बुझाने दौड़े और वे ईसाई भी, जिन की वेदियों की अग्नियाँ और पवित्र बत्तियां प्रारम्भ में भावक (ध्यानी) पूर्व (एशिया) में ही प्रकाशित हुई थीं । एशिया के इस नये प्रकाश को बुझाने के प्रयत्न में हिन्दू और मुसलमानों के साथ मिल गये-सम्मिलित हो गये किन्तु यह स्वर्गीय अग्नि बढ़ती और फैलती ही गई...।''

क्या आर्यसमाज के वर्तमान सदस्य उपर्युक्त आशाओं का विचार करके अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को अनुभव करने को कृपा करेंगे ? क्या उन को कभी यह भोध्यान आयेगा कि आगे चलकर इतिहास उन के कार्यों की कैसी आलोचना करेगा । ''आत्मदा बलदा'' परमपिता सब को बल प्रदान करें कि हम दयानन्द के सच्चे अनुयायी सिद्ध हों ।

भारतीय नीतिशास्त्र और ऋषि दयानन्द

-भवानीलाल भारतीय

आचार्य भर्तृहरि ने धीर पुरुष की जो कसौटी निर्धारित की है उस पर ऋषि दयानन्द पूरी तरह खरे उतरते हैं। भर्तृहरि ने नीति शतक में लिखा कि नीति निपुण पुरुषों की चाहे निंदा हो या प्रशंसा, वे समान रहते हैं। धन की उन्हें परवाह नहीं रहती, वे लक्ष्मी के स्वामी बनें या दरिद्र रहें। जीवन और मृत्यु को समान समझने वाले ऐसे लोग ही वास्तव में धीर हैं।

हमारे देश में नीति ग्रंथों की प्रचुरता रही है। संस्कृत में प्रचुर मात्रा में नीति ग्रंथ लिखे गये। प्राचीनतम वैदिक संहिताओं में मागृधः, संगच्छध्वं संवदध्वम् जैसे नीतिपूर्ण आदेश यत्र तत्र सर्वत्र हैं। उपनिषदों में सत्यं वद, धर्मंचर, स्वान्या प्रमदः आदि नीतिगत आदेश ही हैं। इनके अतिरिक्त विदुर, शुक्र, चाणक्य आदि स्वान्सा के नीति ग्रंथ प्रचुर संख्या में हैं। महाबान्त में शान्ति पर्व तथा अनुशासन पर्व नीति के सागर हैं। हिन्दी में रहीम, तुलसी, वृन्द के दोहे तो गिरधर तथा दीनदयाल की कुण्डलिया नीति के ही प्रस्तोता हैं। यहां तक कि पञ्चतंत्र तथा हितोपदेश जैसे नीति ग्रन्थ पशु पक्षियों की कल्पित कथाओं के ब्याज से लिखे गये हैं।

नीतिज्ञों में वरेण्य महात्मा विदुर ने शासक को चापलूसों से सावधान किया है। उन्होंने आपाततः मीठे बोलने वालों तथा यथार्थ को छिपाने वाले को शत्रु तुल्य बताया। ऋषि दयानन्द ने व्यवहारभानु में बैंगन का शाक खाकर प्रथम दिन हर्षोत्फुल्ल होने वाले किन्तु दूसरे दिन बीमार पड़ने पर अफसोस जाहिर करने वाले चापलूसों से सबको सावधान रहने के लिए कहा 'ऐसे मिष्ट भाषी लोग जो सत्य की उपेक्षा करते हैं बहुत मिलेंगे। किन्तु ऐसे लोग बहुत होंगे जो मीठा सच बोलते हैं किन्तु शिवाजी के कवि भूषण की भांति कम क्या दुर्लभ ही होंगे जा शाही दरबार में अहंकारी औरंगजेब को फटकार कर सकें और कहें मक्का के समान पवित्र पिता शाहजहां को पकड़कर गिरफ्तार किया। मानो मक्का शरीफ में तुमने आग लगा दी। ऐसे सत्यवक्ता, निपट कटु सत्य बोलने वाला यदि दुर्लभ हैं और तो श्रोता तो सर्वथा दुर्लभ ही हैं।

आचार्य भर्तृहरि ने धीर पुरष की जो कसौटी निर्धारित की है उस पर ऋषि दयानन्द पूरी तरह खरे उतरते हैं। भर्तृहरि ने नीति शतक में लिखा कि नीति निपुण पुरुषों की चाहे निंदा हो या प्रशंसा, वे समान रहते हैं। धन की उन्हें परवाह नहीं रहती, वे लक्ष्मी के स्वामी बनें या दरिद्र रहें। जीवन और मृत्यु को समान समझने वाले ऐसे लोग ही वास्तव में धीर हैं।

उत्तम नीतिवाक्य को समन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में बीज वाक्य (key-note address) के रूप में पेश किया उनके स्वयं के जीवन पर दृष्टिपात करें-लोगों ने उनकी तथा उनके विचारों की निन्दा करने में कोई कसर नहीं रखी। उन्हें गुप्त वेश में गोरा-अंग्रेज, ईसाईयत का प्रचारक तक कहा। साथ ही यह भी सत्य है कि उनके जीवन काल में उनके विचारों की प्रशंसा भी कम नहीं हुई। सात समुद्र पार तक उनकी कीर्ति पताका लहराने लगी। सर्वस्व त्यागी संन्यासी होने के कारण लक्ष्मी के प्रति उनको कोई आकर्षण था ही नहीं। अपने पिता की लाखों की सम्पत्ति को ठोकरमार वे कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। मृत्यु और जीवन उनके लिए समान थी। समय आने पर सत्य न्याय और धर्म के लिए उन्होंने अपने जीवन को बलिदान किया। सच ही आचार्य भर्तृहरि की बताई कसौटी पर वे खरे उतरे और धीर पुरुषों में अग्रणी सिद्ध हुए।

अंधे राजा धृतराष्ट्र की रात बड़ी बैचेनी से, करवटें बदलते कटो। सवेरा होते ही द्वारपाल को नीतिमान् भाई दिुर को बुला लाने का आदेश दिया। राजा के समक्ष विदुर महाराज आये और आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हो गये।

यह है विदुरनीति की प्रस्तावना। इस ग्रंथ को पढ़ने की संस्तुति ऋषि दयानन्द ने अपने पाठ्यक्रम विधान में की है। विदुर जी ने कहा- ऐसे दो व्यक्तियों के गले में तो पत्थर की शिला बाँध कर उन्हे पानी में डुबो देना चाहिए। ऐसी भयानक सजा का विधान नीतिज्ञ विदुर ने किनके लिए किया-

१. प्रथम वह जो धनवान तो है परन्तु दानी नहीं है।
२. दरिद्र होकर जो पुरुषार्थहीन है। परिश्रम कर अपनी उदर तृप्ति का साधन नहीं तलाशता। यहां अतपस्वी वह नहीं है जो पंचाग्नि नहीं तापता है अपितु परिश्रम न करने वाले को अतपस्वी कहा गया है। धन कमाने और वैध उपायों से धन संग्रह करने का अधिकार शास्त्रकार ने सबको दिया है। वह वैध उपायों से धनोपार्जन करे, यह कोई दोष नहीं है। यदि आपत्ति की बात है तो यह कि अपनी गरीबी का रोना तो पीटो परन्तु परिश्रम कर अपनी दरिद्रता को दूर करने के बजाए समाज के वैध साधनों से अर्जित धन को आज के साम्यवादियों की भांति distribute equary among all persons irrespective of the fuct whether they deserve this श्लोक है-

द्वावम्यसो निवेष्टव्यो गले बध्वादृढ़शिलाम्
धनवन्तम् अदातारम् दरिद्रम् च अतस्विनम्।।

సూక్తి సుధ

రచన - సంగమేశ్వర్ "సంగమ్" కవి

ఆ॥ కూటిలోని యిసుక గూడ చూడని వాడు
ఏటి లోని దాని నేమి గనును ?
స్వంత దోషములను కొంత దూరమొనర్ప
మొదట యత్న మున్న మేలు మిన్న.

కాళ్ళు వేడిగాను కడుపు మెత్తగాను
మెదడు చల్లగాను ముదముగున్న
అవసరంబు లేదు అసలు డాక్టర్లతో,
మొదట యాచరింప తుదకు మేలు !

పగలు వుదయమరటి పండు బంగారము
తీరు మేలు జేయు తినగ వలెను,
రాత్రిపూట తినిన రాయిగా కీడిడు
కనక రాసులిడిన, తినగ వలదు

త్రోవలోన అరటి తొక్కలు పడియున్న
తీసి వేసి నంత వాసి పోదు,
పెను ప్రమాదములను ఘనముగా తగ్గించు
పుణ్యమబ్బగలదు పుడమిలోన.

ద్వి॥ నరుడు తనదు కంటి మురికిని గనక
పరుల కన్నుల వూసుపరికింపనేల ?
చిరుచిరు మేలులు చేసిన చాలు
ధరలోన జీవితం ధన్యత గాంచు

కం॥ ఆడది లేనిది మిల్లా ?
గాడిద కొట్టమ్ము కన్నకడుహీనంబౌ !
జాడను గని సుజనులు తమ
జోడును సమకూర్చు కుంద్రు చూడుము
"సంగమ్"

"आश्रम"

महाभारत काल के समय तक वैदिक शास्त्र के अनुसार आश्रम तीन ही था । १) गृहस्थाश्रम, २) वानप्रस्थ और, ३) सन्यास आश्रम । उन दोनों आश्लमों से वैदिक धर्म का प्रचार एवं योग-यज्ञ लोग करते और कराते रहते थे । किन्तु महाभारत युद्ध के पश्चात् २५०० वर्ष पूर्व बौद्ध और जैन काल के समय जैनी शिल्पियों ने मूर्त्तियाँ बनानी आरम्भ कर दीं, तभी से उस समय के अल्पज्ञ ब्राह्मणों ने भी समय-समय पर ऋषियों के नाम से वेदादि शास्त्रों के विरीत १८ पुराणों की रचना कर डाली, जिसमें देवी-देवताओं के सम्बन्ध में 'सत्यासत्य अनेक रोचक एवं सृष्टिक्रम के विरुद्ध कहानियाँ रची गई । जिन्हें उस समय के लोगों को (सत्य नारायण जैसे) कथाओं के रूप में प्रचारित किया जाने लगा । इसके अलावा उन्हीं पुराणों के आधार पर ब्राह्मणों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और देवी दुर्गा, काली, सरस्वती, लक्ष्मी और श्रीगणेश आदि की मूर्त्तियाँ क्षत्रिय आदि राजाओं से मिलकर मंदिरों को बनवाकर उनमें स्थापित करने लगे और लोगों से पूजापाठ करवाने लगे । उस समय के कतिपय राजा एवं क्षत्रिय आदि विद्वजन वैदिक ज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं थे । इतना अवश्य जानते थे कि ऋषि, संन्यासी और ब्राह्मण लोग पूज्य होते हैं वे जो भी कहते हैं सत्य वाक्य ही बोलते हैं, किन्तु उन्हे इनका ज्ञान नहीं था कि महाभारत के पूर्व उन्हीं ब्राह्मणों को पूज्य माना जाता था जिनको वेदादि शास्त्रों का सही ज्ञान होता था । (जैसाकि संदीपनी जी थे, जिनकी पाठशाला में श्रीकृष्ण जी विद्याध्ययन के लिए जाते थे) किन्तु उस समय के ब्राह्मण तो स्वार्थी बन गये थे । अपने पुराणों को ही सनातन धर्म सबको बताने लगे थे । (और वेद एवं वैदिक ग्रन्थों को बनारस आदि स्थानों में छिपा दिये थे) धीरे-धीरे वैदिक ज्ञान से रहित लोग क्षत्रियादि के कुल गुरु बन गये थे । उन्होंने सबको अपना यजमान और शिष्य भी बना डाला था । उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि 'ब्रह्मवाक्यजनार्दनः' जो कुछ ब्राह्मणों के मुख से निकले, उसे जानो ब्रह्मा के मुख से निकला, और यह भी कहने लगे कि 'ब्रह्मद्रो ही विनश्यति' जो ब्राह्मणों से द्रोह करता है, उसका नाश हो जाता है । उन्होंने यह भी कह डाला कि वेद केवल ब्राह्मण ही पढ़ सकते हैं और औरों को देखने एवं पढ़ने का अधिकार नहीं है, जबकि स्वयं वेद कहता है:-

'ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्यय चस्वाय चारणाय' (ऋगवेदादि भाष्यभूमिका, ४५६) अर्थात् वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिये है वैसा ही क्षत्रिय, अर्य=वैश्य, शूद्र, भृत्य और अति शूद्र के लिये भी बराबर है क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो विद्या का पुस्तक होता है, वह सबका हितकारक है, और ईश्वर रचित पदार्थों के दायभागी सब मनुष्य अवश्य हेते हैं । इसलिए उसका जानना सब मनुष्यों को उचित है, वह माल सबके पिता का सब पुत्रों के लिये है, किसी वर्ण विशेष के लिये नहीं ।'

इस प्रकार एक तरफ जैसे ब्राह्मणों ने धर्मन्धता फैला रखी थी, उसी प्रकार मध्यकालीन तान्त्रिकों के समर्थक सायण और महीधर आदि ने वेदों के भाष्य का अनर्थ कर डाला । इनके देखा देखी जर्मनी और यूरोप देश के लिए संस्कृत का पंडित कहे जाने वाले ईसाईयों के पक्षधर 'मैक्समूलर' ने भी वेदों का अनर्थ कर दिया, (वेदों को भेड़ बकरी चराने वाले गडेरियों का गाना बताया, जैसा कि ईसाईयों के पूर्वज चराया करते थे) इन अनर्थों का लाभ पराधीन भारत के अंग्रेज इतिहासकारों ने उठाया । आर्यों की वैदिक सभ्यता को उन्हीं अनर्थों एवं पौराणिकता के आधार पर लिख दिया । इतिहास में बहुदेव वाद, एवं आर्यों को शिकारी, असभ्य घोषित कर दिया । क्या श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण और शास्त्रकार 'खणाद मुनि, कपिल मुनि, जैमिनी मुनि, वेद व्यास जी, गौतम मुनि, पतंजलि मुनि तथा उपनिषदकार सब असभ्य थे ? यह सब मध्यकालीन वेद विद्वानों के अभाव में अंगरेज इतिहासकारों ने आर्यो के साहित्य एवं उनके व्यवहार को मनमानी ढंग से लिख डाला है । जिसे आज भी उसी को हमारे पूर्वज बन्दर थे, मांसाहारी थे, यज्ञों में बलि देते थे, बिल्कुल वैदिक ज्ञान के विपरीत (वाममार्गी मतानुसार) विषयों का पढ़ाया जाता है ।

जैसे भारत के इतिहास में अंगरेजों ने (भाष्यकारों के अनर्थकारक) अथर्ववेद को जादू-टोना का पुस्तक कहा वैसे ही कविकाल के जयदेव रचित गीत गोविन्द के रचना आदि में विद्वजनों के प्रतिरोध के अभाव में श्री कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी को अलग कर राधा को उनकी प्रेमिका बना दिया । इस प्रकार देशी-विदेशी लोगों ने भारतीय आर्य संस्कृति-सभ्यता और साहित्य को बिगाड़ कर रख दिया ।

धन्य है ऋषि दयानन्द को जिनका १९वीं सदी के प्रारंभ में आविर्भाव हुआ और अनर्थ किये गये वेदों को उद्धार किया और उसका सत्यार्थ प्रकट कर के निर्भय होकर संसार के सामने कहा कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । उसमें न किसी का इतिहास है, न जादू-टोना, और न कहीं प्रतिमा की पूजा, न पशुओं को मारने की आज्ञा है और न वह बहुदेव वाद है, उसमें जितने देवों के नाम आये हैं सब एकेश्वर शक्तियों के उपनाम है । वेद ने भी कहा है:-

'इन्द्रमित्रं वरुणमग्निं दिव्यः स सुपर्णोगुरुत्मान् । एकं सद् विप्रा बहुद्या बदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋग्वेद, 1, 164,46)

विप्रा=विद्वान् परमात्मा के (एकं सद्) एक होने पर भी (बहुधा वदन्ति) बहुत प्रकार से अर्थात् बहुत नाम से (उसके) कहते हैं । (अथ, उ) और (सः) उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, (दिव्य) अलौकिक (सपुर्णः) शक्तियुक्त (गुरुत्मान) गौरववाला (यम न्यायकारी और मातरिश्वातम्) वायु (आहुः) कहते हैं । विशेष जानकारी के लिये देखें, 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम, समु. । उस समय के ब्राह्मणों ने जितने वेद विरुद्ध प्रथा को चलाया था उन सबका ऋषि दयानन्द ने खण्डन कर सुधार किया और सत्य विद्या को जानने के लिए सभी में एक नई चेतना नई जागृति उत्पन्न कर दी । ईश्वर प्राप्ति साधन के लिये सन्ध्योपासना अष्टांगयोग और वायुशोधन के लिये यज्ञ करने का उपदेश देते रहे ।

बाल विवाह इन्हीं ब्राह्मणों ने प्रचलित किया था । आश्चर्य की वात तो यह है कि भारत में एक वर्ष से भी कम की दूध पीती बच्चियों की भी शादी कर दी जाती थी और

वही फिर शीघ्र विधवा बन जाती थी और हत्यारे माता पिता उस बच्ची के साथ विधवाओं का जैसा क्रूरता का व्यवहार शुरु कर देते थे। स्वार्थी लोगों ने छोटी बच्चियों का ही विवाह करना धर्म बतला दिया था, जैसाकि ''शीघ्रबोध'' में लिखा है- ''अष्टवर्षा भवेद्गौरी, नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ।। माता चैव पिता चैव ज्येष्ठ भ्राता तथैव चा श्रयस्ते नरकं यान्तिदृष्टवा कन्यां रजस्वलाम्।। अर्थात्-आठ वर्ष की कन्या 'गौरी' कहलाती है, नौ वर्ष की 'रोहिणी' और दश वर्ष की 'कन्या' । इसके विवाह करने में पुण्य है और इससे ऊपर वह 'रजस्वला' कहलाती है जिसको देखकर माता पिता और बड़े भाई तीनों नरक को जाते हैं ।

ये उन्हीं स्वार्थी पोपों की मनगढ़ंत बातें थीं, जिन्होंने देश में बाल विवाह प्रचलित करके विधवाओं की संख्या बढ़ा दी थी । इन महापापों के भागी यही लोग हैं । लेकिन धन्य है- ऋषि दयानन्द और आर्य समाज को जिनके अनथक परिश्रम से बाल विवाहों का प्रचार अब कम हो गया है । किन्तु अभी भी बहुत से कुसंस्कारी घराने ऐसे हैं जिनमें विधवाओं की बड़ी दुर्दशा होती है । उस अभागिनी के कोई कमाने वाला तो नहीं होता, इसलिये वह दीन और दुःखी रहती है, क्योंकि धन के बिना संसार में सुख कहां? उस बेचारी को न तो फिर माँ बाप आश्रय देते हैं और न सास ससुर । वे तो उल्टा यह और कहते हैं कि इसी डायन ने हमारे पुत्र को खा लिया । इस प्रकार सब ओर से ठोकर खाकर खाने वाली अभागिनियों को घर छोड़ना पड़ जाता था और उन्हीं जैसों के लिये विधवाआश्रम खोला गया ताकि आश्रम में रहकर कुछ काम कर सकें ।

इसी प्रकार वृद्धाश्रम भी खोला गया । इन आश्रमों की आवश्यकता तब हुई जब भौतिकी शिक्षा और २०० वर्ष तक अंग्रेजों की सभ्यता ने भारतवासियों को अपने रंग में रंग दिया, और तभी से भारतीय संस्कृति सभ्यता को नवीन विद्यार्थी भूलने लगे । संस्कृत तो दूर की बात रही, राष्ट्रभाषा हिन्दी का छोड़ बालकों के माता पिता अंग्रेजी पाठशालओं में भर्ती कराने लगे । इसलिये कि अंग्रेजी भाषा की सब जगह कद्र है, उससे विज्ञान को भी समझा जा सकता है। तो क्या हिन्दी के माध्यम से विज्ञान को नहीं समझा जा सकता ? क्या- प्रतीक्षालय, गणक यन्त्र, दूरदर्शन, दूरभाष, जल और ताप विद्युत, पाताल्तरेल आदि हिन्दी शब्द नहीं हैं? वेसे और भी शब्द बन सकते हैं । वैदिक ग्रंथों में तो ऋषियों ने यानों, यन्त्रों एवं अन्य विस्फोटक आदि अस्त्र शास्त्रों के अनेकों नामकरण किये हैं जिन्हें आज के विद्यार्थी देखना नहीं चाहते ।

भारत में ही 'शून्य' का आविष्कार वेदों से आर्य भट्ट ने किया था । इसी प्रकार ई. पूर्व सैकड़ों आविष्कार हो चुके थे, जिनका लाभ विदेशियों ने उठाया । अतः भारत के छात्र भूल जाते हैं कि इसी आर्यावर्त भारत देश के ऋषियों ने विज्ञान का बीजात्मक ज्ञान एवं दर्शनों का सूत्रपात किया था । जिस प्रकार सर्व प्रथम बालकों के जन्मदाता और शिक्षा दीक्षा करने वाले उसके माता पिता ही होते हैं, इसी प्रकार गुरु के समान भारत को विद्यार्थीजन विदेशी शिक्षा सभ्यता से उसकी संस्कृति को भूल गये हैं और अपने माता पिता को मोम, मम्मी, डैड-डैडी कहने लगे हैं, जिसका अर्थ न माता होता है न पिता ! इन्हीं विदेशी संस्कारों ने माता पिता के प्रति श्रद्धा और सेवा से वंचित कर दिया । भारत में बहुत से परिवार ऐसे हैं जो अपने वृद्ध पिता माता की कद्र नहीं करते, उन्हें कोई ठीक से पूछता नहीं, क्या हुआ है, भोजन किये कि नहीं, बिना । बिना मच्छरदानी के उन्हें सोने के लिए स्थान दिया जाता है। जब उन्हें बेटे बहुओं से कष्ट होने लगते हैं तब वे लाचार होकर वृद्धाश्रम में चले जाते हैं ।

इसी प्रकार जो बच्चे अनाथ होते हैं उन्हें अनाथालय में दे दिया जाता है । जिन बच्चों को कोई पालन पोषण करने वाला नहीं होता जो असहाय होते हैं, उन्हें अनाथालय में दे दिया जाता है । बच्चों के अनाथ होने के अनेक कारण होते हैं । गरीब माता पिता बच्चे तो पैदा कर देते हैं पर उनकी देखभाल जब ठीक से नहीं कर सकते तब लाचार होकर अनाथालय में दे देते हैं । अनाथालय में पल रहे बच्चे-बच्चियों के पालन-पोषण में कोई कमी नहीं रहती, उन्हे उसमें शिक्षित भी किया जा रहा है ताकि उनका भविष्य उज्ज्वल हो

इन अनाथालयों एवं आश्रमों को आश्लय, स्थान और चलाने वाले कुछ अमीर लोग एवं दानी दाताओं से चलता रहता है ।

...पृ. १ का शेष

ईश्वर प्रणिधान), आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का अभ्यास करना होता है जिससे ईश्वर का साक्षात्कार होकर विवेक की प्राप्ति होती है और जीवात्मा मष्त्यु के होने पर जन्म–मरण के चक्र से 31 नील 10 खरब वर्षों की अवधि के लिए अवकाश पाकर ईश्वर के सान्निध्य में सुख व आनन्द का भोग करता है। इसके बाद पुनः मोक्ष के पूर्व के अवशिष्ट कर्मों के अनुसार मनुष्य जन्म होता है और वह पुनः अन्य जीवों की भांति कर्म–फलों में आबद्ध हो जाता है। किसी विद्वान का एतद् विषयक एक प्रसिद्ध श्लोक 'पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं।' है जिसमें बताया गया है कि मैंने बार–बार जन्म लिया है, बार–बार मष्त्यु को प्राप्त किया है, अनेक जन्मों में अनेक माताओं की कोख में शयन किया है, आदि। यही अवस्था हमारी व सभी जीवात्माओं की है।

मनुष्य को जन्म व मष्त्यु ईश्वर की कष्पा से प्राप्त होती है। जब हमारा शरीर पुराना व वष्द्ध हो जाता है तो पुराने वस्त्रों का त्याग कराकर ईश्वर हमें नये वस्त्र के रूप में नया शरीर प्रदान करता है। हमारी आत्मा शस्त्रों से काटी नहीं जा सकती, अग्नि इसे जला नहीं सकती, जल इसे गिला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती। इन गुणों वाली जीवात्मा का ईश्वर हर जन्म, हर क्षण व पल का साथी रहा है और आगे भी रहेगा। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ईश्वर किसी जीवात्मा का साथ कभी नहीं छोड़ता। अतः इस नाशवान भौतिक संसार में न फंसकर हमें इस विवेक ज्ञान को अपनी जीवात्मा के दुःखों से मुक्ति वा मोक्ष का साधन मानकर हर पल व क्षण वा अधिकाधिक ईश्वर का स्मरण व उसका ध्यान कर व समाधि लगा कर धन्यवाद करना चाहिये जिससे हम अपने प्रिय सनातन साथी ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार अपने को बनाकर उसकी मोक्ष रूपी कष्पा के अधिकारी बन सकें।

–मनमोहन कुमार आर्य

आर्य समाज स्थापना दिवस के संदर्भ में

'महर्षि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश और आर्यसमाज मुझे क्यों प्रिय हैं?'

सष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि संसार में अनेक महापुरूष हुए हैं। उनमें से अनेकों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं या फिर उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं का संग्रह कर उसे ग्रन्थ के रूप में संकलित किया है। हम उत्तम महान पुरूष को प्राप्त करने के लिए निकले तो हमें आदर्श महापुरूष के रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रतीत हुए। हमने उन्हें अपने जीवन में सर्वोत्तम आदर्श महापुरूष के रूप में स्वीकार किया है। ऐसा नहीं कि उनसे पूर्व उनके समान व उनसे उत्कष्ट पुरूष या महापुरूष, महर्षि, ऋषि, योगी आदि उत्पन्न ही नहीं हुए। हमारा कहना मात्र यह है कि हमारे सम्मुख जिन महापुरूषों के विस्तष्त जीवन चरित्र उपलब्ध हैं, उनमें से हमने महर्षि दयानन्द को अपने जीवन का सत्य, यथार्थ व आदर्श पथ प्रदर्शक पाया है। न केवल हमारे अपितु वह विश्व के सभी मनुष्यों के सच्चे हितैषी, विश्वगुरू व पथप्रदर्शक रहे हैं व अपने ग्रन्थों व कार्यों के कारण अब भी हैं। विश्व के लोगों ने अपनी अज्ञानता व कुछ निजी कारणों से उनका उचित मूल्याकंन नहीं किया। महर्षि दयानन्द के अतिरिक्त हम अन्य महापुरूषों यथा श्री रामचन्द्र जी, योगेश्वर श्री कष्ण चन्द्र जी, आचार्य चाणक्य, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरू गोविन्द सिंह, बन्दा बैरागी और सभी आर्य विद्वानों व प्रचारकों को भी अपना आदर्श मानते हैं।

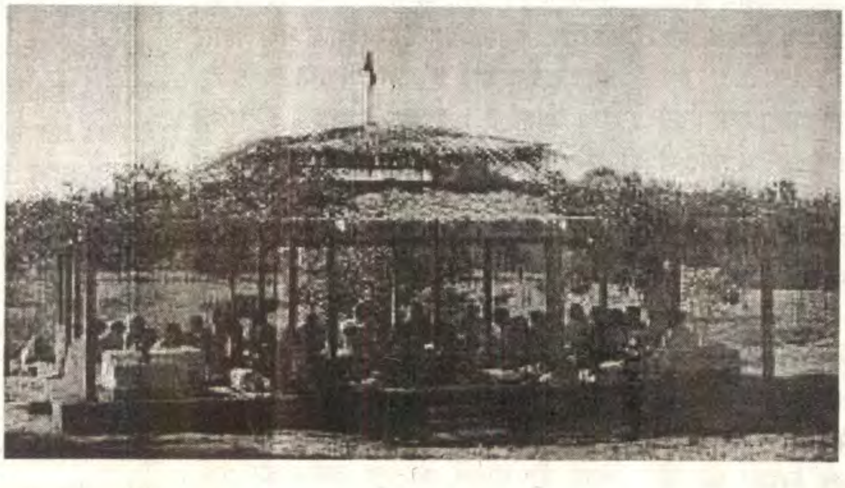

संसार में सष्टि के आरम्भ से अद्यावधि अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। गणनातीत ग्रन्थों में एक ग्रन्थ वेद भी है जिसके बारे में हमें महर्षि दयानन्द जी से पता चला कि वह मनुष्यों व ऋषियों की रचना नहीं अपितु ईश्वरीय ज्ञान है जो सष्टि के आरम्भ में चार सर्वाधिक पवित्र ऋषि आत्माओं अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को संसार के तत्कालीन व भावी मनुष्यों के कल्याण व उद्धार के लिए ईश्वर ने अपने अन्तर्यामी

स्वरूप से दिया था। उस ज्ञान को ही स्मरण कर व अन्यों में प्रचार कर इन चार ऋषियों व इनसे पढ़कर ब्रह्माजी ने प्रथम वेदों का प्रचार व प्रसार किया था और तब जो परम्परा आरम्भ हुई थी, उसका ही निर्वहन महर्षि दयानन्द ने ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में किया। महर्षि दयानन्द के आविर्भाव से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत का प्रसिद्ध महायुद्ध हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप विश्व की अपने समय की एकमात्र सनातन वैदिक धर्म व संस्कषति की कालान्तर में अप्रत्याशित अवनति हुई थी। वेद विलुप्ति के कागार पर थे। वेदों के सत्य अर्थ तो प्रायः विलुप्त ही हो चुके थे तथा उनके स्थान पर कपोल कल्पित भ्रान्त अर्थ प्रचलित थे। वैदिक धर्म व संस्कषति में भी अनेक विकार आकर यह अन्धविश्वासों, कुरीतियों, पाखण्डों व सामाजिक असमानताओं सहित शिक्षा व ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक अवनत अवस्था में आ गई थी। यही कारण था देश व देश से बाहर अनेक अवैदिक मतों का प्रादुर्भाव हो चुका था। सभी मत सत्य व असत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों से युक्त थे। इन मतों के कारण लोग परस्पर मित्र भाव न रखकर एक दूसरे के प्रति शत्रु भाव ही प्रायः रखते थे। दिन प्रतिदिन इसमें वषद्धि हो रही थी। ऐसा कोई महापुरूष उत्पन्न नहीं हुआ था जो इनमें एकता के सूत्र की तलाश करता और उसका प्रस्ताव कर अपने मिथ्या विश्वासों और मान्यताओं को छोड़कर सत्य का ग्रहण करने व असत्य का त्याग करने का आह्वावन करता। यह काम महर्षि दयानन्द (1825–1883) ने अपने समय में अपनी पूरी शक्ति व प्राणों की बाजी लगाकर किया जिसका परिणाम आज का पूर्व की तुलना में अधिक उन्नत विश्व कहा जा सकता है जिसमें अनेक अन्ध विश्वास कम व दूर हुए हैं, सामाजिक कुरीतियां व विषमतायें

कम व दूर हुई हैं और ज्ञान–विज्ञान देश–विदेश में नित्य नई ऊंचाईयों को छू रहा है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अपूर्व संकल्प, इच्छा शक्ति, वेद ज्ञान, साहस, वीरता, देश प्रेम, प्राणीमात्र के हित को सम्मुख रख कर विश्व कल्याण के लिए वेदों की ओर लौटने का सन्देश दिया। उन्होंने बताया कि वेद ईश्वर प्रदत्त सत्य व प्रमाणिक ज्ञान है। उनकी मान्यता थी कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है तथा वेदों का पढ़ना व पढ़ाना तथा सुनना व सुनाना सब आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ, बुद्धिमान, ईश्वर को मानने वाले सच्चे व निष्पक्ष लोगों का परम कर्तव्य व धर्म है। वेदों की सत्यता और प्रमाणिकता के साथ ही वेदों की प्रासंगिकता और सर्वांगपूर्ण ध र्म की पुस्तक होने का प्रबल समर्थन उन्होंने युक्ति व तर्कों सहित अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि उनके अनेक ग्रन्थ हैं जो सत्यार्थ प्रकाश की मान्यताओं व सिद्धान्तों के पूरक हैं। उनके साहित्य से सिद्ध होता है कि वेद पूर्णरूपेण सर्वांगपूर्ण धर्म ग्रन्थ हैं। धर्म की जिज्ञासा के लिए अन्य किसी ग्रन्थ की मनुष्यों को अपेक्षा नहीं है क्योंकि वेद ईश्वरीय सत्य वाक् होन से स्वतः प्रमाण और संसार के अन्य सभी ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं अर्थात् सत्य व प्रमाणिकता में वेदों के समान संसार का अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। हां, भाषा आदि के ज्ञान की दर्षष्टि से वेदों के संस्कष्त, हिन्दी, अंग्रेजी व अन्य–अन्य भाषाओं में भाष्य व टीकाओं की सहायता ली जा सकती है। सत्यार्थ प्रकाश को भी हम संसार के सभी मनुष्यों का एक आदर्श ध र्म ग्रन्थ कह सकते हैं जिसमें वेदों की शिक्षाओं का अनुसरण करते हुए मनुष्यों के मुख्य–मुख्य कर्तव्यों पर प्रकाश डालने के साथ अकर्तव्य, अन्धविश्वासों व मिथ्या मान्यताओं का परिचय देकर उनका त्याग करने की प्रेरणा भी दी गई है। सत्यार्थ प्रकाश में ऐसा क्या है जो हमें सर्वाधिक प्रिय है? इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।

सत्यार्थ प्रकाश का आरम्भ महर्षि दयानन्द ने विस्तष्त भूमिका लिख कर दिया है। इससे महर्षि दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश की रचना करने का उद्देश्य तथा पुस्तक में सम्मिलित किये गये विषयों का ज्ञान होता है। वह लिखते हैं कि उनका इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य–सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवष्त्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान, आप्तों (धर्म विशेषज्ञों) का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरुप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। महर्षि दयानन्द ने भूमिका में इन वाक्यों में जो कुछ कहा है, उसका उन्होंने पूरे सत्यार्थ प्रकाश में पूरी निष्ठा से पालन किया है। हम समझते हैं कि इस प्रयोजन व उद्देश्य से शायद ही कोई धर्म ग्रन्थ लिखा गया हो और यदि लिखा भी गया है तो सम्प्रति उनमें अनेक अशुद्धियां व असत्य मान्यतायें, अन्य मतों के प्रति विरोध व शत्रुता का भाव, छल, कपट, लोभ व बल पूर्वक उनका धर्मान्तरण करने का विचार व अनुमति जैसे अमानवीय विचार विद्यमान है जिससे संसार में अशान्ति उत्पन्न हुई है।

सत्यार्थ प्रकाश के पहले समुल्लास व अध्याय में हम ईश्वर के मुख्य निज नाम सहित उसके सत्य स्वरूप व 100 से कुछ अधिक नामों व उन नामों के तात्पर्य के बारे में सविस्तार जानकारी प्राप्त करते हैं। इससे वेदों में अनेक ईश्वर व देवता होने की बात निरर्थक व असत्य सिद्ध होती है तथा यह विदित होता है कि एक ही ईश्वर के असंख्य गुण–कर्म–स्वभाव व सम्बन्धों के कारण उसके अनेक नाम हैं। इस अध्याय को समझ लेने पर जहां ईश्वर का सत्य स्वरूप जानकर आत्मा की तर्षप्ति होती है वहीं ईश्वर के स्वरुप, नाम व कार्यों के विषय में भिन्न भिन्न ग्रन्थों में जो मिथ्या व अन्धविश्वासयुक्त कथन है, उसका भी निराकरण हो जाता है। दूसरे अध्याय में माता–पिता व आचार्यों द्वारा कैसी शिक्षा दी जाये इसका ज्ञान कराया गया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण व मनुष्य व समाज के धारण व व्यवहार करने योग्य है। तीसरा समुल्लास पढ़कर ब्रह्मचर्य का महत्व व उससे लाभ, पठन पाठन वा अध्ययन–अध्यापन सहित सत्य व असत्य ग्रन्थों का भी परिचय मिलता है और पढ़ने वा पढ़ाने की रीति का भी ज्ञान होता है। सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में युवावस्था में विवाह और गष्हस्थ आश्रम के सद् सद् व्यवहारों की शिक्षा दी गई है। पांचवा अध्याय गष्हस्थाश्रम का निर्वाह कर इसके कर्तव्यों व दायित्वों से मुक्त होकर वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में प्रवेश व उसके महत्व व विधान को विस्तार से समझाया गया है। इस विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ का छठा अध्याय प्रजा व राजधर्म विषय पर है जिसमें वेद व मुख्यतः मनुस्मर्षति के आधार पर शासन व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है जिसे पढ़कर अनेक बातों में यह वर्तमान की व्यवस्था से भी श्रेष्ठ प्रतीत होती है। सातवां समुल्लास ईश्वर प्रदत्त ज्ञान वेद और ईश्वर के स्वरूप के बारे में वेद, युक्ति, तर्क तथा ज्ञान–विज्ञान से पुष्ट ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डाल कर श्रोता की इस विषय में पूर्ण सन्तुष्टि कराता है जिससे संसार के अन्य एतदसम्बन्धी ग्रन्थ निरर्थक

से प्रतीत होते हैं। आठवां समुल्लास वैदिक सषष्टि विज्ञान से सम्बन्धित है जिसमें जगत की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय पर ज्ञान व विज्ञान से परिपूर्ण प्रकाश डाला गया है। यह ज्ञान संसार के अन्य सभी ध ार्म ग्रन्थों में प्रायः नदारद है जिससे उनकी न्यूनता व अपूर्णता प्रकट होती है।

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ के नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्धन तथा मोक्ष, जन्म, मष्त्यु, लोक व परलोक की ज्ञान से पूर्ण व्याख्या प्रश्नोत्तर शैली में कर वैदिक ज्ञान का संसार से लोहा मनवाया गया है। दसवें समुल्लास में आचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। ग्याहरवां समुल्लास भारतवर्षीय नाना मत–मतान्तरों की अज्ञानपूर्ण मान्यताओं का परिचय कराता है और साथ हि उनका युक्ति व प्रमाणों से खण्डन किया गया है जिसका उद्देश्य सत्य का ग्रहण व असत्य का त्याग कराना मात्र है। बारहवें, तेरहवें व चौदहवें समुल्लासों में कमशः चारवाक–बौद्ध–जैन, ईसाई व मुस्लिम मत का विषय प्रस्तुत कर सत्य के ग्रहणार्थ उनकी कुछ मान्यताओं का परिचय दिया गया है। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन करने पर मनुष्य को अपने कर्तव्य व धर्म का पूर्ण बोध होने के साथ अन्य मतों का परिचय भी मिलता है। सत्यार्थ प्रकाश के अनुरूप अन्य कोई ग्रन्थ संसार में नहीं है। इससे सत्य धर्म का निर्णय करने व उसका पालन करने का ज्ञान होता है जिससे मानव जीवन सफल होता है। सत्यार्थ प्रकाश वेदों पर आधारित ग्रन्थ है, इसमें दी गई मान्यतायें सार्वभौमिक है और विश्वस्तर पर इनका पालन होने से अशान्ति दूर होकर विश्व में शान्ति की स्थापना की पूर्ण सम्भावना परिलक्षित होती है। सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर मनुष्य सत्य विधि से ईश्वरोपासना करने वाला भक्त, वायु–जल–पर्यावरण का शुद्धि कर्ता, माता–पिता–आचार्य–विद्वानों–सच्चे–संन्यासियों की सेवा करने वाला, देश भक्त, समाज सेवी, ज्ञान–विज्ञान का पोषक व धारणकर्ता, स्त्रियों को आदर व सम्मान देने वाला तथा वैदिक गुणों से धारित स्त्रियों को माता के समान मानकर उनका सम्मान करने वाला आदि अनेकानेक गुणों वाला मनुष्य निर्मित होता है। यह कार्य सत्यार्थ प्रकाश व वेद करते हैं जो अन्य किसी प्रकार से नहीं होता। सत्यार्थ प्रकाश का उद्देश्य किसी मत–मतान्तर का विरोध न कर केवल सत्य को प्रस्तुत करना व उसका पालन करने के लिये लोगों को प्रेरित करना है, यही इस ग्रन्थ की संसार के अन्य सभी ग्रन्थों से विशिष्टता है। हम सत्यार्थ प्रकाश को देवता कोटि के मनुष्यों द्वारा रचित ग्रन्थों में सर्वोत्तम ग्रन्थ पाते हैं, इसलिये हमें यह ग्रन्थ सर्वाधिक प्रिय है। इसके लेखक महर्षि दयानन्द में आदर्श महापुरूष के सभी दिव्य गुण व क्रियायें विद्यमान होने व उन्होंने समाज, देश व विश्व की उन्नति के लिए जो अवदान वा योगदान दिया है, इस कारण उन्हें सर्वोत्तम आदर्श महापुरूष मानते हैं।

महर्षि दयानन्द ने वैदिक विचारध ारा, मान्यताओं व सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार के लिए 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज ने वेदों के प्रचार प्रसार, कुरीति उन्मूलन, सामाजिक विषमता दूर कर समरसता स्थापित करने सहित देश को स्वतन्त्र कराने में प्रमुख भूमिका अदा की है। सम्प्रति समय के साथ कुछ शिथिलतायें भी संगठन में आयीं हैं जिसको दूर करना नितान्त आवश्यक है जिससे कि प्रभावशाली तरीके से वेदों का प्रचार प्रसार हो और संगठन सुदष्ढ़ एवं आदर्श बने। महर्षि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पूर्ण अंहिसात्मक संगठन है और प्रेम व सदभावपूर्वक ज्ञान का प्रचार करता है। इसके मूल में अपनी संख्या बढ़ाने हेतु हिंसा, लोभ, लालच, छल व प्रपंच वर्जित हैं। यह प्राणी मात्र के प्रति दया रखता है। कोई भी सच्चा आर्यसमाजी मांसाहार व मदिरापान, अण्डे व अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करता। आर्यसमाज व वैदिक धर्म के दरवाजे सभी मतों के अनुयायियों के लिये खुले हैं। कोई भी यहां आकर सदाचरण कर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधना कर सफलता प्राप्त कर सकता है। आर्यसमाज ने दलितों सहित सभी वर्णों के बन्धुओं वैदिक विद्वान बनाने के साथ पुरोहित बनाया है और सभी स्त्रियों को वेद विदुषी भी बनाया है। अनेक कार्यों में यह भी उसका अभूतपूर्व कार्य है। हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि विश्व भर में चर्चित योग वेदों की ही देन हैं। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन का आधार वेद ही हैं। संसार का कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि वह योग को स्वीकार नहीं करता। सबके जीवन में कहीं अधिक व कहीं कुछ कम योग समाया हुआ है। किसी न किसी रूप में आसान, व्यायाम व प्राणायाम सभी करते हैं। योग के दो अंग यम व नियम तथा इनके उपांग अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिध ान को भी प्रायः संसार के सभी लोग मानते व इन पर आचरण करते हैं। अतः हमारा मानना है कि संसार के सभी मतों के लोग आंशिक रूप से योग करते हैं। जो योग से परहेज करते हैं उन्हें योग को पूर्णतया अपने जीवन का अंग बनाना चाहिये। इसमें उन्हीं का लाभ व कल्याण है। हम यह भी कहना चाहते हैं कि हम आज जो कुछ हैं, उसमें महर्षि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेख विस्तष्त हो गया है अतः इन्हीं शब्दों के साथ हम लेखनी को विराम देते हैं और सभी पाठकों से आग्रह करते हैं कि सत्यार्थप्रकाश का जीवन में बार–बार पाठ करें। इससे आपको वह मिलेगा जो संसार के अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करने से नहीं मिल सकता।

–मनमोहन कुमार आर्य

అన్యమతస్థుల గుండెల్లో రైళ్లు

- ఎం.వి.ఆర్. శాస్త్రి

మదన్‌మోహన్ మాలవ్యా, లాలా లజపతిరాయ్ వంటి మహామహుల ప్రేరణ, పూనికలతో స్వామి శ్రద్ధానంద 'శుద్ధి'ని ఒక ఉద్యమంగా చేపట్టింది 1923లో. కాని దానికి బీజాలు పావు శతాబ్దం కిందటే పడ్డాయి. జాతీయ దృష్టిని అంతగా ఆకర్షించలేదనే కాని అదీ ఉద్యమ స్థాయిలోనే సాగింది. తొలి ఉద్యమానికి పెద్ద దిక్కు పూర్వాశ్రమంలో శ్రద్ధానంద సన్యాసే.

మాప్లాలో ముస్లిం మతోన్మాదుల బీభత్సం చూశాక, బలవంతపు మత మార్పిడులకు ప్రతిక్రియగా మహమ్మదీయులపై గురి పెట్టి సంఘటన, శుద్ధి ఉద్యమాలు లేచాయని చాలామంది అనుకుంటారు. నిజానికి ఆ ఉద్యమాల తాత్త్విక భూమిక విశాలమైనది. సామాజిక దురాచారాలు, తగని వివక్ష, ఛాందస మత మౌఢ్యాల మూలంగా హిందూ సమాజానికి దూరమైన నిమ్న కులాలను, ఇతర సామాజిక వర్గాలను తిరిగి అక్కున చేర్చుకుని, హిందూ సమాజాన్ని సంఘటితం చేసేందుకు దయానంద సరస్వతి స్వామి స్ఫూర్తితో 19వ శతాబ్దం చివరిలో ఆర్యసమాజ్ గొప్ప కదలిక తెచ్చింది. దాని ఆలోచనా రీతిని, అనుసరించిన మార్గాన్ని, సాధించిన విజయాలను ***"Hindu Sangathan: Saviour of the Dying Race"*** అనే గ్రంథంలో శ్రద్ధానంద ఇలా వివరించాడు;

అస్పృశ్యత దురాచారం హిందువుల ప్రతిష్ఠకు కళంకం. దాని పాపాన్ని ఇప్పుడు మొత్తం భారత జాతి భరిస్తున్నది. స్వరాజ్యం డిమాండును మన రాజకీయ నాయకులు ఎప్పుడు లేవనెత్తినా ఈ స్వయంకృత పాపాన్ని ఎత్తిచూపి వారి నోరు మూయిస్తున్నారు. తమలో మూడో వంతు జనాభాను కాళ్లకింద అణగదొక్కే వారికి విదేశీయుల క్రూరత్వం గురించి ఫిర్యాదు చేసే హక్కు సహజంగానే ఉండదు.

ఇంతకీ ఈ అంటరానివాళ్లు ఎవరు ? జాగ్రత్తగా నిష్పాక్షికంగా పరిశీలన చేస్తే హిందువులలోని పై మూడు కులాల వారి గోత్రాలకే అస్పృశ్యులు కూడా చెందుతారని అర్థమవుతుంది. మనం నీచంగా చూసే భంగీ, ఢేడ్ వంటి కడమ కుల వర్గాలతో సహా! బ్రాహ్మణ, క్షత్రియ, వైశ్య కులాల వారూ అంటరానివారూ ఒకే పూర్వీకుల సంతతి వారన్నమాట. నైతిక పతనం వల్ల, అసహ్యకరమైన ఆహారపు అలవాట్ల వల్ల 'అస్పృశ్యులు' సామాజికంగా దిగజారారు. తమ నైతిక వర్తనను, జీవన విధానాన్ని వారు సంస్కరించుకుంటే పూర్వస్థితిని వారు తిరిగి పొందటానికి ఏ అవరోధమూ ఉండటానికి వీల్లేదు. మహాప్రభు చైతన్య, కబీర్, నానక్, గురుగోవింద్ వంటి వారు ఈ విషయమై చెప్పిన హితోక్తులు హిందూ సమాజం పెడచెవిన పెట్టింది.

అప్పుడు అవతరించాడు మహా సంస్కర్త దయానంద సరస్వతి. గుణకర్మల అనుసారం వర్ణ వ్యవస్థను నాలుగు రీతుల విభజించిన ఆర్య ధర్మాన్ని ఆయన సుప్రతిష్ఠితం చేసి సర్వమానవ సమానత్వాన్ని చాటి చెప్పాడు. ఆ ఆచార్యుడు కార్యరంగంలో దిగే నాటికి హిందూ ధర్మం నుంచి ఒక ప్రవాహం క్రైస్తవం వైపు మరలిపోతున్నది. హిందూమత దురహంకారానికి గురి అయిన సామాజిక వర్గాలను క్రిస్టియన్ మిషనరీలు ఆకట్టుకుని, తమ మతంలోకి అనేక మార్గాల్లో మార్పించేవారు.

అంతవరకూ రామ్‌చరణ్ చమర్‌గా ఉన్న అంటరానివాడు తన నెత్తిమీద కొప్పును కత్తిరించి, నుదుటి మీద నీళ్లతో రెండు రేఖలు రాయించుకుని, పీటర్‌గానో పాల్‌గానో మారి, గొడ్డుమాంసం తినసాగగానే అతడి లెవెలు మారిపోతుంది. బ్రాహ్మణులతో కరచాలనం చేసి, అగ్రవర్ణాల వారి సరసన ఒకే తివాచి మీద కూచుని, వారి బావుల నుంచి తానూ నీళ్లు తోడుకునే స్థాయి అతడికి వస్తుంది. అది చూసి చమర్, ఢేడ్, దోమ్, వసివంటి అస్పృశ్యవర్గాల నుంచి ఎన్నో వేల మంది క్రైస్తవ మతం పుచ్చుకున్నారు.

ఈ ధోరణిని అడ్డుకోవటానికి ఆర్య సమాజంలో మేము నడుము కట్టాము. సిక్కుల్లోని రహతియా తెగతో శుద్ధి కార్యం మొదలు పెట్టాము. వారి పూర్వీకుడిని గురుగోవింద్ సింగే స్వయంగా తన కరవాలపు అమృతంతో పునీతుడిని చేశాడు. అయినా మతం మారాక వారిని తమ సరసన ఖాల్సావారే కూచోనివ్వడం లేదు. క్రీ.శ. 1896లో వారు తమను శుద్ధిచేసి ఆర్య ధర్మంలోకి తీసుకోవలసిందిగా ఆర్యసమాజ్‌ను అర్థించారు. మేము వారిని ఆర్యసమాజ్‌లోకి స్వీకరించి, సామాజికంగా మతపరంగా పూర్తి హక్కులు దఖలు పరచాము.

దాని పర్యవసానంగా ఆర్య సమాజికులు ఎన్నో ఇబ్బందులు, అనేక రకాల ప్రతిఘటనలు ఎదుర్కోవలసి వచ్చింది. వారిని అందరూ వెలివేశారు. అయినా పట్టువదలక ముందుకు పోయేసరికి పరిస్థితి మారింది. వ్యతిరేకించినవారే మెత్తపడ్డారు. క్రీ.శ. 1898 చివరికల్లా కొన్ని వేల మంది రహతియాలను హిందూ సమాజంలోకి తిరిగి తీసుకురాగలిగాము.

దీని తరవాత పంజాబ్‌లోని సియాల్ కోట్‌లో అంటరాని కులమైన మేఘ్‌లో మతాంతతీకరణ అయిన వారి మీద

ఆర్యసమాజ్ 1903లో దృష్టి పెట్టింది. అక్కడా మొదట్లో తీవ్రమైన వ్యతిరేకత వచ్చింది. ఆర్య మహాశయులను నతాయించే వనిలో మహమ్మదీయులు కూడా హిందువులతో చేతులు కలిపారు. శుద్ధి జరిగిన వారి సంఖ్య అర లక్షకు చేరాక ఇక చేయగలిగింది లేక ప్రతికూలత సమసిపోయింది. అదే మాదిరిగా ముజఫర్‌నగర్, ముల్తాన్ జిల్లాలో ఓడులను, పంజాబ్ కొండ ప్రాంతాల్లో దొమ్మాలను వేల సంఖ్యలో శుద్ధిచేసి, స్వధర్మంలోకి తిరిగి తేగలిగాము. కాశ్మీర్ స్టేట్‌లోని మేఘ్‌ల అభ్యున్నతికి జమ్మూ తదితర ప్రాంతాల్లో పెద్ద ఉద్యమం నడిచింది. నలభై వేల మంది ఆర్యధర్మంలోకి తిరిగి వచ్చారు. పంజాబ్ ముందుండి నడిపించిన ఈ ఉద్యమ ప్రభావం ఎంత అంటే - ఆర్య సమాజికుల ప్రతిబంధకం కారణంగా తమ మతాంతరీకరణ కార్యక్రమం యు.పి.లోని ఆగ్రా, ఔధ్ వగైరా ప్రాంతాల్లో కుంటుపడిందని 1921 జనాభా లెక్కల సేకరణ సందర్భంలో క్రిస్టియన్ మిషనరీలు మొత్తుకున్నారు. ఢిల్లీ సహా అనేక నగరాల్లో, రాష్ట్రాల్లో ముమ్మరంగా సాగించిన శుద్ధి ప్రభావం వల్ల 1911 జనాభా లెక్కలతో పోల్చితే ముస్లిం భంగీల సంఖ్య తగ్గి హైందవ భంగీల సంఖ్య పెరిగింది.

[*Hindu Sangathan, Saviour of the Dying Race, Shraddhananda Sanyasi,* pp.84-89]

సహజంగానే అది పెద్ద సంచలనం. హిందూ మతం అన్యమతాల భోజ్యం అని అప్పటిదాకా బయటివారు అనుకుంటూ వచ్చారు. క్రైస్తవం, ఇస్లాంల వలె హిందుయిజానికి ఒక ప్రవక్త లేడు; ఒక పవిత్ర గ్రంథం లేదు; ఒక కట్టుబాటు లేదు; చుట్టుముట్టిన సవాళ్లను గుర్తించి, తనను తాను కాపాడుకోవాలన్న ధ్యాసా లేదు; కాబట్టి ఆ కాఫిర్ల సముదాయాన్ని ఒక మతంగా గుర్తించాల్సిన పనే లేదు అన్న చులకనభావం వారిది. దీనికి తగ్గట్టు బయటికి పోయేవారిని ఆపాలని గాని, కొత్తవారిని తమలోకి ఆకర్షించాలని గాని హిందువులు ఏనాడూ ప్రయత్నించకపోవటం ఇతర మిషనరీ మతాలకు బాగా అలుసైంది. హిందువులు 'ధిమ్మీ'లు కాబట్టి 'సత్యమైనమతం' వైపు తేరిపార చూసే హక్కే వారికి లేదని, సత్య ప్రమాణాన్ని, సిసలైన ఏకైక విశ్వాసాన్ని అనుసరించే 'ముమిన్'లు అయినందున మహమ్మదీయుల మీద హిందువులను 'సత్య' మార్గంలోకి మరలించే దైవదత్త బాధ్యత ఉన్నదని ముస్లిం మతస్థుల భావన.

అనేక శతాబ్దాలపాటు సాగిన స్థితిగతులు ఒక్కసారిగా మారాయి. **సత్యార్థ ప్రకాశ్** పవిత్ర గ్రంథంగా, దయానంద సరస్వతి ప్రవక్తగా, విశ్వాన్ని ఆర్యమయం చేయటం ధ్యేయంగా, 'ఆర్యసమాజ్' రంగంలోకి దిగి, మిషనరీ మతాలకు దీటుగా మతాంతరీకరణలకు, మారిన వారి ఘర్‌వాపసీలకు ఉద్యమించటం ఇతర మతాల వారికి కంటగింపయింది.

'శుద్ధి' ప్రక్రియ ఎప్పటి నుంచో ఉంది. సాధారణంగా అది సముద్రాన్ని దాటటం, తినకూడనిదాన్ని తినడం, చేయకూడని పని చేయడం వంటి నిషిద్ధ కార్యాలకు పాల్పడిన వారికి ప్రాయశ్చిత్త కర్మకాండకే పరిమితమైంది. అంతదాకా వ్యక్తులకు పరిమితమైన ప్రక్రియను కాస్తా - మొత్తంగా సామాజిక వర్గాల మీద గురిపెట్టి, అన్యమతాల వారు పట్టుకుపోయిన వారిని వెనక్కి తెచ్చుకునేందుకు, కుల వ్యవస్థకు అట్టడుగున అణచిపెట్టిన దళిత వర్గాలను దగ్గరికి తీసుకునేందుకు ఒక మహోద్యమంగా రూపుదాల్చటంతో అన్యమత ప్రచారకుల గుండెల్లో రైళ్లు పరిగెత్తాయి. అంతవరకూ రకరకాల ప్రలోభాలతో, ఒత్తిళ్లతో మతాంతరీకణలు ముమ్మరంగా సాగి, తమ వారిని కోడిపిల్లల్లా ఎత్తుకుపోతున్నా పట్టించుకోకుండా మొద్దు నిదురపోయిన హిందూ సమాజంలో చలనం వచ్చింది. హిందూ మహాసభ పూనిక వల్ల జిల్లా, గ్రామ స్థాయిల్లో ఎల్లెడలా వ్యాయామశాలలు, మార్షల్ విద్యల తర్ఫీదు కేంద్రాలు వెలిసి పిరికి హిందువులు కాస్తా దెబ్బకు దెబ్బ తీసి దేనికైనా రెడీ అనే స్థాయికి పోరాట సన్నద్ధం కావటం వల్ల హిందూ వ్యతిరేక శక్తులకు తెలియని భయం ఆవహించింది. సామాజిక ఉద్రిక్తత క్రమేణా హెచ్చింది.

సరిగా ఈ కారణంవల్లే మహాత్మాగాంధి 'శుద్ధి', 'సంఘటన', ఉద్యమాలను తీవ్రంగా వ్యతిరేకించాడు. కమ్యూనల్ విభజన గీతలు గట్టిపడి, మైనారిటీల్లో అభద్రతా భావం కలుగుతుంది కాబట్టి 'శుద్ధి', 'సంఘటన', భావాలు ప్రమాదకరమైనవని ఆయన గట్టిగా వాదించాడు. కాని, అప్పటి పరిస్థితుల్లో ఆయన సుద్దులు పెద్దగా పని చేయలేదు. మనకు కావలిసింది గాంధీ సలహాలు కాదు... 'గీత'లో భగవానుడు చేసిన బోధనే ఇప్పుడు మనం అనుసరించాలి... హిందువులు పిరికితనాన్ని వదిలి రాణాప్రతాప్, శివాజిలను ఆదర్శంగా తీసుకుని మగటిమి చూపాలి - అంటూ **సుధాకర్, అభ్యుదయ, లీడర్** వంటి పత్రికలు ఆవేశపూరితంగా రాసిన రాతలు హిందూ సమాజాన్ని ఉగ్రూతలూగించాయి.

"హిందూ సమాజాన్ని సంరక్షించటం ఇప్పుడున్న అతి ప్రధాన ప్రశ్న... హిందూ సమాజాన్ని శక్తివంతం చేయటానికి మనం కొత్త మార్గాలను అన్వేషించాలి. విడివిడిగా ఉన్న వివిధ వర్గాలను, శక్తులను ఒక దగ్గర చేర్చి, మొత్తం సమాజాన్ని దుర్భేద్యంగా సంఘటితం చేయాలి" అని ప్రబోధిస్తూ - **సంగఠన్ కా బిగుల్** పేర స్వామి సత్యదేవ్ పరివ్రాజక రాసిన పుస్తకం లక్షల కాపీలు అమ్ముడయ్యాయి. *హిందూ సంగఠన, శుద్ధిలకు సంబంధించిన ప్రతి సభలోనూ అందులోని భాగాలను చదివి వినిపించేవారు.*

[*Anxious Hindu Masculinities in Colonial North India: Shuddhi and Sangathan Movements, Charu Gupta*]

విభిన్న దృక్పథాలు కలిగిన హిందీ పత్రికలు హిందువులు సంగఠితం కావలసిన అవసరాన్ని ఒక్క గొంతుతో నొక్కి చెప్పాయి. వివిధ వర్గాల, వేరువేరు తరగతుల హిందువుల మధ్య ఐక్యత హిందూ - ముస్లిం ఐక్యత కంటే ఎక్కువ ప్రాధాన్యాన్ని సంతరించుకుంది. 'మతపరమైన ఐకమత్యమే సాంస్కృతిక, జాతీయ ఐక్యతగా వికసించే ఇండియా లాంటి దేశంలో 'శుద్ధి' ఉద్యమం మతానికి, మత విశ్వాసానికి సంబంధించిన విషయంకాక... ఒక రాజకీయ, జాతీయ ఉద్యమంగా విస్తృత ప్రాముఖ్యం సంతరించు కుంటుంది' అని హిందూ మహాసభ నాయకుడు వి.డి.సావర్కర్ నూతన శక్తిని సిద్ధాంతీకరించాడు.

- ఎం.వి.ఆర్.శాస్త్రి

'మా జంధ్యాలు తెంపండి'

Early in 1923 there were serious communal clashes in Multan and Amritsar. Later in the year the Muslims started a definite communal movement called Tanzeem and Tabligh in order to organise the Muslims into a virile community. As a counter point to this the Sangathan movement sprang up among the Hindus for promoting physical culture and removing social abuses. Swami Shraddhananda vigorously carried on the Suddhi movement... with a view to bringing back within the Hindu fold those who had renounced Hindu faith and were converted into Islam. The Sangathan and Suddhi movement were denounced by the Muslims...
[*History of Freedom Movement*, R.C.Majumdar, vol.III.p.225-26]

1923 మొదట్లో ముల్తాన్, అమృత్‌సర్‌లలో తీవ్రమైన మత ఘర్షణలు చెలరేగాయి. అనంతరం ఆ ఏడే మహమ్మదీయులను మగటిమి గల సముదాయంగా సంఘటితపరచేందుకు టాంజిమ్, తబ్‌లీగ్ పేర ముస్లింలు కచ్చితంగా కమ్యూనల్ అయిన ఉద్యమాన్ని మొదలెట్టారు. దానికి ప్రతిగా హిందువులలో దేహదార్ఢ్యాన్ని పెంచేందుకు, సామాజిక చెడుగులను తొలగించేందుకు 'సంఘటన' ఉద్యమం లేచింది. హిందూ ధర్మాన్ని వదిలి ఇస్లాంలోకి మారిన వారిని

హిందూ సమాజంలోకి తిరిగి తెచ్చేందుకు స్వామి శ్రద్ధానంద శుద్ధి ఉద్యమం సాగించాడు. 'సంఘటన' 'శుద్ధి' ఉద్యమాలను ముస్లింలు తెగనాడారు.

1920ల దశకంలో హిందూ మహమ్మదీయ వర్గాల్లో పోటాపోటీగా సాగిన ఉద్యమాల వల్ల దేశంలో తీవ్రమైన ఉద్రిక్తత నెలకొంది. అనేక హింసాత్మక ఘర్షణలకు అది దారితీసింది. హిందువుల 'సంఘటన' 'శుద్ధి' ఉద్యమాలకు భయపడి, వాటి తాకిడిని తట్టుకునేందుకే ముస్లింలు 'టాంజిమ్', 'తబ్లిగ్'లను చేపట్టారని కొంతమంది మేధావులు వాదిస్తుంటారు. దేశంలో గాంధీగారు కష్టపడి తీసుకొచ్చిన మత సామరస్యాన్ని, సుహృద్భావ వాతావరణాన్ని, హిందూ ముస్లిం సఖ్యతను చెడగొట్టింది దుందుడుకు హిందూ తీవ్రవాదులేనని ఆ ప్రచారాన్ని నమ్మి చాలామంది పొరబడుతుంటారు. ఏది ముందు, ఏది వెనక... దేనికి ఏది ప్రతిక్రియ అన్నది ఆర్.సి.మజుందార్ ***History of Freedom Movement*** 3వ సంపుటంలో రాసిన పై వాక్యాలను బట్టి విస్పష్టమవుతుంది.

కారణాంతరాల వల్ల ఇస్లాం మతం పుచ్చుకున్నా, ఇంకా పూర్వపు హిందూ ఆచారాలను, వ్యవహారాలను పాటిస్తూ, పాత వాసనల నుంచి బయటపడని నయా ముస్లింలకు బుద్ధి సుద్ధి చేసి, ఇస్లామిక్ విశ్వాసాలు, సెంటిమెంట్ల పట్ల వారికి మక్కువ కలిగించి నూటికి నూరుపాళ్ల మహమ్మదీయులుగా తీర్చిదిద్దటం... సంఖ్యాపరంగా అల్పసంఖ్యాకులైనా పూర్వ ప్రాభవానికి తగ్గట్టు తన ప్రాధాన్యాన్ని నిలబెట్టుకోగల శక్తివంతులుగా ముస్లింలను తయారుచేయటం, తబ్లీగ్, టాంజిమ్ ఉద్యమాల ప్రధాన లక్ష్యం.

"Listen my dear Hindu brothers, listen very attentively. If you put abstacles in the path of our Tanzim movement, and do not give us our rights, we shall make common cause with Afghanistan or some other Muslim country and establish our rule over India"

(ప్రియమైన హిందూ సోదరులారా వినండి. చాలా శ్రద్ధగా ఆలకించండి. మా టాంజిమ్ ఉద్యమం దారిలో మీరు అడ్డంకులు కల్పించి, మా హక్కులు మాకు ఇవ్వకపోయారో - మేము ఆఫ్ఘనిస్తాన్‌తోనో, మరో ముస్లిం దేశంతోనో చేతులు కలిపి ఇండియాపై మా పరిపాలన తీసుకొస్తాం) అని లాహోర్ హిందువులకు ప్రముఖ ముస్లిం నాయకుడు డాక్టర్ సైఫుద్దీన్ చేసిన హెచ్చరిక ఆ కాలంలో మహమ్మదీయ వర్గాల ఘనఃస్థితికి సూచిక.

మహమ్మదీయులను సంఘటితపరచే హక్కు మహమ్మదీయ సంస్థలకు ఉన్నట్లే హిందువులను సంఘటితం చేసే హక్కు హిందూ సంస్థలకూ ఉంటుంది. ఇతరులను తమ మతంలోకి ఆకర్షించటం, తమ నుంచి వెళ్లిన వారిని తిరిగి వెనక్కి తెచ్చుకోవటం మహమ్మదీయులు ఎప్పటినుంచే చేస్తున్నప్పుడు హిందూ మతం నుంచి బయటికి వెళ్లిన వారిని వెనక్కి తెచ్చుకునే హక్కు హిందువులకూ ఉండంది. అనేక శతాబ్దాలుగా దేశంలో తమ సంఖ్యను మత మార్పిడుల ద్వారానే ముస్లింలు పెంచుకుంటూ వచ్చినప్పుడు అదే పనిని హిందువులూ చేపడితే తప్పు పట్టజాలరు. ముస్లింలు చేస్తే ఒప్పు అయినది హిందువులు చేస్తే తప్పు అయిపోదు.

ముస్లింలను మగటిమి గల సమాజంగా తయారుచేయాలని ఉద్యమించిన వారు... తమ ధాటిని తట్టుకోవటానికి హిందువులు కూడా శారీరక వ్యాయామాలకు, పోరాట పాటవానికి ప్రాధాన్యం ఇస్తూ పోటీ ఉద్యమం నడపటాన్ని సహించలేక పోయారు తమకు వ్యతిరేకంగా మిగతా దేశస్థులను ఏకం చేయటానికే హిందువులు పంచములను దగ్గరికి తీస్తున్నారని, తమను బలహీనపరచటానికే 'శుద్ధి' పేర తమ వారిని ఎత్తుకుపోతున్నారని మహమ్మదీయ వర్గాలు గగ్గోలు పెట్టాయి. జమీందార్లు, వడ్డీ వ్యాపారులు బెదిరించి, అక్రమంగా ఒత్తిళ్లు పెట్టి ముస్లిం మతస్థులను హిందూ మతంలోకి బలవంతంగా మార్పిస్తున్నారని, ఇరుగు పొరుగు హిందువులు ఏకమై అల్పసంఖ్యాకులైన ఫిర్యాదులు చేశారు. ముస్లింల మీద ఈక వాలినా తల్లడిల్లే కాంగ్రెసు నాయకులు ఈ ఆరోపణలను పురస్కరించుకుని నిజనిర్ధారణకు ఒక కమిటీని వేశారు. ఎన్ని విధాల ప్రయత్నించి, ఎంత కష్టపడ్డా ఆ కమిటీ వారు హిందువులపై నేరారోపణకు ప్రాథమిక రుజువులను సంపాదించలేకపోయారు.

ఏమైతేనేమి? వారిని చూసి వీరు, వీరిని చూసి వారు పోటాపోటీగా పోరాటానికి సమాయత్తం కావడంతో సామాజిక ఉద్రిక్తత హెచ్చింది. తెలియని భయం అందరినీ అవహించింది. పేర్లు, ప్రకటిత ధ్యేయాలు ఏమైనప్పటికీ ఉద్యమాల ఉద్ధతికి ప్రధాన కారణం ఎదుటివారి దాడిని కాచుకుని, తమ సంఖ్య క్షీణించకుండా చూడాలన్న ఆరాటమే. ఒకప్పుడు కుత్తుకలు కోసి, కత్తితో భయపటెట్టి కాఫిర్లను సామూహికంగా తమ మతంలోకి లాక్కున్న వారికి ఇప్పుడు తమ బలాన్ని నిలబెట్టుకోవటం కోసం, సంఖ్యను కాచుకోవటం కోసం నానా యాతన పడాల్సి రావటం ఒక రకంగా చిన్నతనమే. ఆ కాలాన ముస్లిం మహానాయకుడు, మహాత్ముడు తెగ మెచ్చిన సుగుణాల పోవు అయిన మహమ్మదలీ ఆ మాట దాచుకోకుండా అన్నాడు. అది కూడా 1923 సంవత్సరాంతాన కాకినాడ కాంగ్రెసు అధ్యక్ష పీఠం నుంచి.

"My own belief is that both sides are working with an eye musch more on the next decennial census than on heaven itself, and I sigh for the days when our forefathers setteled things by

వైదిక కుటుంబ వ్యవస్థ

అదిత్యై రాస్నా సీన్ద్రాణ్యా ఉష్ణీషః

పూషా ఉ సి ఘర్మాయ దీష్వ ॥ - యజు. 38-3

ఓ నారీమణీ ! పుడమికి నీవు కళ్ళెము వంటి దానవు. గృహస్థునికి శిరోభూషణము. భూమితో సమానంగా పోషకురాలవు. నీవు గృహ యజ్ఞంలో హృదయ పూర్వకంగా సహకరించుము.

మహిళా జగత్తును గూర్చిన ఈ భవ్యభావనలను పరిశీలించండి.

ధ్రువాసి ధరుణేతో జజ్ఞే ప్రథమ మేభ్యో

యోనిభ్య ఉ అధి జాత వేదాః ॥ -యజు. 13-24

ఓ నారీమణీ ! నీవు స్థిరంగా ఉంటావు. నీవు గృహస్థునకు ఆధారం. మానవుడు మొట్టమొదట తల్లి ను?ండే జన్మిస్తున్నాడు. తరువాత ఉత్కృష్ట జ్ఞానవంతుడై గురువు మొదలైన ఆశ్రయ స్థానాల నుండి పునర్జన్మను పొందుతున్నాడు.

వేదం స్త్రీ గొప్ప తనాన్ని గౌరవాన్ని పదకొండు నామాలతో కీర్తించింది. చూడండి.

ఇడే రన్తే హవ్యే కామ్యే చన్ద్రే

జ్యోతే ఉ దితే సరస్వతి మహిః విశ్రుతి

ఏతాతే అఘ్న్యేనామాని

దేవేభ్యో మాసుకృతం బ్రూతాత్ ॥ -యజు 8-43

స్త్రీకి వేదాల్లో 'అఘ్న్యా అనే పేరుంది. అంటే ఎప్పుడూ కొట్టడానికి బిధ కలిగించడానికి వీలు లేనిది అని అర్థం. మరొక పేరు **'ఇడ'** - అంటే ప్రశంసనీయమైన గుణములు కలది **'రన్తా'** - అనగా రమించుటకు యోగ్యమైనది. **'హవ్యా'** - స్వీకరించదగినది. **'కామ్యా'** -కామించుటకు యోగ్యమైనది. **'జ్యోతా'** - శ్రేష్ఠమైన శీల సంపదతో ప్రకాశించునది. **'చంద్రా'** - చంద్రునితో సమానంగా ఆనందం కలిగించునది. **'అదితా'** - అఖండ చరిత్ర కలిగి ఉండునది. **'సరస్వతి'** - ప్రసిద్ధమైన విజ్ఞాన వంతురాలు. **'మహి'** - పూజనీయురాలు, **'విశ్రుతీ'** - వివిధ గుణాలతో ప్రసిద్ధి చెందినది. ఇవన్నీ స్త్రీలకు పేర్లు. ఇట్టి ఉత్తమ గుణాలు కలిగిన ఓనారీమణీ ! భర్తనైన నాకు ఉత్తమ గుణాలను ఉపదేశింపుము.

స్త్రీలు - తాడనీయలని తులసీదాసు అభిప్రాయ పడగా ఎపుడు ఏమాత్రము దండనీయులు కారని వేదం చెబుతున్నది. అంతేకాదు పతికి ఉత్తమ గుణాలను ఉపదేశించడానికి కూడ యోగ్యురాలన్నది వేదం. వేదాల్లో స్త్రీలకు ఎంత గౌరవం యివ్వబడిందో చూడండి.

మనుస్మృతి కూడ స్త్రీలను ఎంతో గౌరవ ఆదరణలను ప్రసాదించింది.

యత్ర నార్యస్తు పూజ్యంతే రమంతే తత్ర దేవతాః ।

యత్రైతాస్తు న పూజ్యంతే సర్వాస్తత్రాఫలాః క్రియాః ॥ మను. 3-56

స్త్రీలకు సత్కారము - గౌరవము కల గృహంలో పురుషులు విద్యా యుక్తులయి దేవ సంజ్ఞను పొంది ఆనందంతో క్రీడించుతారు. స్త్రీలకు సత్కారం లేని గృహంలో క్రియలన్నియు నిష్ఫలము లవుతాయి.

పితృభిర్ భ్రాతృభిశ్చైతాః పతిభిర్దేవరైస్తథా ।

పూజ్యా భూషయితవ్యాశ్చ బహు కల్యాణ మీప్సుభిః ॥-మను. 3-55

స్త్రీలను గౌరవపూర్వకంగా కనకాది ఆభూషణాధులచే సంతోష పెట్టడం తండ్రికి, అన్నకు, భర్తకు, మరదికి ధర్మం. గృహ కల్యాణమును కోరేవారందరు ఇలా చేస్తుండాలి.

శోచంతి జామయో యత్ర వినశ్యత్యాశు తత్కులమ్ ।

న శోచంతి తు యత్రైతా వర్ధతే తద్ధి సర్వదా॥ -మను. 3-57

స్త్రీలు శోకాతురలై దుఃఖిస్తూ ఉండే కులంగాని, ఇల్లుగాని శీఘ్రంగా నశిస్తుంది. ఆనందంతోను, ఉత్సాహంతోను ఉప్పొంగుతుండే స్త్రీలు గల కులం, కుటుంబం సర్వదా వర్ధిల్లుతుంది. 'కల కంఠి కంట కన్నీరొలికిన సిరి ఇంట ఉండ నొల్లదు సుమతీ' - స్త్రీ కన్నీరు పెట్టిన ఇంటిలో సంపదలు నశిస్తాయని సుమతీ శతకం చెప్పింది.

తస్మాదేతాః సదా పూజ్యా భూషణాచ్ఛాదనాశనైః ।

భూతి కామైర్నరైర్నిత్యం సత్కారేమాత్సవేషు చ ॥ -మను. 3-59

కాబట్టి ఐశ్వర్యాన్ని కోరేవారు పూజ్యా - సత్కార సమయంలోను, ఉత్సవ - పండుగల సమయంలోను స్త్రీలను భూషణ (నగలు), వస్త్ర, భోజనాదులచే ఆవశ్యంగా సత్కరించాలి అన్నది మనుస్మృతి.

'పూజ' - శబ్దానికర్థం సత్కారమని గ్రహించాలి. దినమందుగాని, రాత్రియందు గాని, ప్రథమ దర్శనమందుగాని, ఒకరి నుండి ఒకరు వేరగునపుడు గాని, స్త్రీ పురుషులు పరస్పరం ప్రీతి పూర్వకంగా 'నమస్తే' అని చెప్పి సత్కరించుకోవాలని మహర్షి దయానందుల వారు సత్యార్థ ప్రకాశంలో సుడివియున్నారు.

ఉత్తమ స్త్రీని మనుష్యులందఱి నుండి - అనగా వర్ణభేదము, కుల భేదము, మత భేదము, దేశ భేదము లేక భార్యగా గ్రహింపదగునని మనుస్మృతి చెప్పింది.

స్త్రియో రత్నాన్యథో విద్యా సత్యం శౌచం సుభాషితమ్ ।

వివిధాని చ శిల్పాని సమాదేయాని సర్వతః ॥ - మను. 2-240

ఉత్తమ స్త్రీని, నానా విధ రత్నాలను, విద్యను, సత్యాన్ని, పవిత్రతను, సుభాషితాన్ని, నానా ప్రకారములైన యంత్ర విద్యల్ని - అన్ని విధాలైన కళాకౌశలాల్ని అన్ని దేశాల నుండి మనుష్యలందరి నుండి గ్రహింపవచ్చు నన్నది మనుస్మృతి. అధమ కులంలో ఉద్భవించిన అరుంధతిని వసిష్ఠ మహర్షి తన ధర్మ పత్నిగా స్వీకరించినట్లు మన పూర్వుల గాధలు చెబుతున్నాయి.

స్త్రీలలో ఉండవలసిన ఆత్మ విశ్వాసాన్ని, గృహ కృత్యాల్ని నిర్వహించడంలో వారి దక్షతను - సామర్థ్యాన్ని వేదం ఇలా వివరించింది.

అహం కేతు రహం మూర్ధా హ ముగ్రా వివాదనీ

మమే దనుక్రతుం పతిః సేహనా యా ఉపాచరేత్ ॥

-ఋ. 10-159-2

నేను ధ్వజం - ఎత్తుగా కట్టిన జెండాతో సమానంగా సమస్తాన్ని విశదం చేసేదాన్ని. నేను గృహస్థునకు శీర్ష స్థానం - ఉత్తమ స్థానంలో ఉన్నాను. నేను గొప్ప బలశాలిని, ఉపన్యాస కళా ప్రవీణురాలను. విరోధుల్ని పరాభవించగల నా బుద్ధి ననుసరించే నా భర్త మెలగుతుంటాడు.

మమ పుత్రాః శత్రుహణో ఉ థో మే దుహితా విరాట్ ।

ఉతాహ మస్మిసజ్జయా పత్యౌ మే శ్లోక ఉత్తమః ॥-ఋ 10-159-3

నా పుత్రులు శత్రువులను సర్వనాశనం చేయగలవారు. నాకుమార్తె జ్ఞాన తేజస్సుతో విరాజిల్లుతున్నది. నేను స్వయంగా విజయ శీలిని. నాభర్త శత్రు విజయ సంబంధమైన ఎంతో యశస్సును - కీర్తిని గడించి

యున్నాడు. నానడవడి ఉత్తమమైంది. గృహ కార్యాల్లో స్త్రీ ఎలా ఉండాలో వేదం చెప్పింది చూడండి.

అఘోర చక్షు రపతి ఘ్నీధి శివా పశుభ్యః సుమనాః సువర్చాః ।
వీర సూర్దేవృకామా సోన్యా శంనో భవ ద్విపదే శం చతుష్పదే॥

-ఋ. 10-85-44

ఓ నారీమణీ ! నీవు సౌమ్యదృష్టి కలిగి భర్తకు కష్టదయకురాలవు కాక మెలగవలసింది. పశుపక్ష్యాదులకు కల్యాణ కారివిగా నుండుము. శుభ మనుస్సు కలిగి, ఉత్తమ సంకల్పాలతో, ఉత్తమ తేజోవంతులైన పుత్రులను కని, మరదులను వాత్సల్యంతో పరామర్శిస్తూ అందరికి కల్యాణం - మేలు కలిగించే దానివిగా ఉండుము. నీవు భృత్యులు - సేవకులు - ఇంటి పనులు మొదలైనవి చేసే వారికి, పశువులు, పక్షులు మొదలైన వానికి శాంతిని కలిగించవలసింది.

స్త్రీలు ఎలానడచుకోవాలి ?

మనుస్మృతి స్త్రీ గృహ కృత్యాలను ఎలా నిర్వర్తించాలో బాగా చెప్పింది చూడండి.

సదా ప్రహృష్టయా భావ్యం గృహకార్యేషు దక్షయా ।
సు సంస్కృతోపస్కరయా వ్యయే చాముక్త హస్తయా ॥

-మను. 5-150

అతి ప్రసన్నత - సుముఖతతో గృహ కార్యాల్లో చతురురాలయి పదార్థాలన్నిటిని ఉత్తమ విధితో సంస్కరించుతూ - బాగుచేసికుంటూ, ఇంటిని శుద్ధంగా - పరిశుభ్రంగా ఉంచి మితవ్యయి - మితంగా ఖర్చు పేట్టేదిగా ఉండడం స్త్రీకి యోగ్యం. అవసరాన్ని అనుసరించి ఖర్చు పెట్టాలి. దుబారా ఖర్చు చేయకూడదు. అన్ని వస్తువుల్ని పవిత్రంగా ఉంచుకోవాలి. ఔషధ రూపమయిన అల్లము, జీలకర్ర, మిరియాలు, శొంఠి, ధనియాలు, కరివేపాకు, కొత్తిమెర, లవంగాలు, ఆవాలు, దాల్చిన చక్క, తులసి మొదలైన ఓషధుల్ని వినియోగించి శరీరానికి, ఆత్మకు - మనస్సుకు రోగాన్ని రాకుండా చేసే పాకాలను - వంటల్ని చేయాలి. వ్యయానికి తగిన లెక్క ఉంచి భర్త మొదలైన వారికి వినిపించాలి. ఇంటి పనివాళ్ళ చేత తగినట్లు పనిచేయించాలి. ఇంటి పనిని దేనిని చెడనీయకూడదు.

స్త్రీకి గృహిణి అనిపేరు. 'గృహిణీ గృహముచ్యతే' - గృహిణి గృహానికి యజమానురాలు. గృహ కార్యాలను, అతిథి అభ్యాగతులను ఆదరించడం మొదలైనవి ఆమె చూసుకుంటుంది. ద్రౌపది మహారాణి అయినప్పటికి రోజూ లక్షమంది అతిథి అభ్యాగతులకు - దేశ విదేశాల నుండి వచ్చే రాజులు, వారి పరివారం మొ॥ వారికి అన్నపానాదులను సమకూర్చేపని ఆమె స్వయంగా తన అజమాయిషీలో చూసికొనేదని భారతంలో ఒకచోట చెప్పబడింది. ఇక్కడ వాలెస్ మహాశయుడు చెప్పిన మాటలు ఉదాహరించదగినవిగా ఉన్నాయి.

"The hand that rocks the cradle
Is the hand that rules the world" -W.R. Wallace

ఊయల లూపిన మాతృహస్తమే విశాల విశ్వాన్ని పరిపాలిస్తుంది. ఒక అజ్ఞాతవ్యక్తి ఇలా అంటాడు.

"Behind every successful man there stands a woman who tells him that he is wrong" -W.R. Wallace

విజయుడైన ప్రతి పురుషుని వెనుక అతని లోపాలు చెప్పి అతడు సఫలుడవడానికి కారకురాలైన ఒక స్త్రీ మూర్తి ఉంటుంది.

మరికొందరు పాశ్చాత్యపండితులు స్త్రీలను గురించి చెప్పిన మాటలు ఇచట ఉదాహరించదగినవిగా ఉన్నాయి.

"The silliest woman can manage a clever man
but it needs a very clever woman to manage a fool"
-Rudyard kipling

"అవివేకురాలైన స్త్రీ మేధావియైన పురుషుణ్ణి సంబాళించ గలుగుతుంది. కాని ఒక మూర్ఖుణ్ణి సంబాళించాలంటే చాల తెలివైన స్త్రీ అవసరమవుతుంది"

"There is no slave out of heaven like a loving woman, and of all loving women, there is no such slave as a mother" -Henry word Beecher

"ఈ భూమి మీద ప్రేమిస్తూ ఉండే స్త్రీకి మించిన తాసిలేదు. ఇలా ప్రేమించే స్త్రీలందరి కంటె తల్లికి మించిన దాసి లేదు." -హెన్రీ వర్డ్ బీచర్

అంటే ఒకరిని ప్రేమించే స్త్రీ ఆవ్యక్తికి అన్ని విధాలా సేవ చేస్తుంది. ఇలా ప్రేమించే స్త్రీలందరి కంటె తల్లి మిక్కుటమైన ప్రేమ కలిగింది. కాబట్టి ఇంటిల్ల పాదికి సేవలు చేసి ఉత్తమ దాసి అనిపించుకుంటుంది. 'కార్యేషుదాసీ' అని ఇంతకు పూర్వం చెప్పుకున్నాం గదా ?

"Women have simple tastes. They can get pleasure out of the conversation of children in arms and men in love" ^ H.L. Meneken.

స్త్రీలు సామాన్యమైన అభిరుచులు కలిగి ఉంటారు. చేతుల్లోని బిడ్డలు చెప్పే మాటల వల్ల తమను ప్రేమించే పురుషుల వల్ల పరవశలై ఆనందం పొందుతారు.

-హెచ్.యల్.మెనేకెన్.

స్త్రీల నడత ఎలా ఉండాలో ఋగ్వేదంలో ఇలా చెప్పబడింది.

అధః పశ్యస్వ మోపరి సన్తరాం పాదకౌ హర
మా తే కశప్లకౌ దృశవ్ స్త్రీ హి బ్రహ్మా బభూ విధః ॥

-ఋ. 8-33-19.

ఓ సోదరీ ! పైకి చూడవద్దు అంటే గర్వపడవద్దు. క్రింది వైపు చూడుము అంటే వినయాన్ని కలిగి ఉండు. రెండు పాదాలను చక్కగా భూమి మీద పెట్టి నడుస్తూ ఉండు. చూడ తగని నీ అంగాలు - అవయవాలు ఎవరికిని చూడడానికి అవకాశం కల్గించకు. ఇట్టి వినయాన్ని కలిగి ఉంటే స్త్రీవైనా వేదవేత్తవు, పూజనీయురాలవు కాగలవు.

నేటి స్త్రీలకు ఈమంత్రార్థాన్ని గురించి ఆలోచించవలసిన అవసరమెంతో ఉంది. నేడు వారీలోకం ఎటు పోతున్నదో చూడండి. అర్థ నగ్నంగా ఇతరులెవరూ చూడరాని తమ అవయవాలను స్త్రీలు వీధుల్లో ప్రదర్శించు తున్నారు. అటువంటి వారిని చూసి ఆకర్షితులై కుర్ర కారు జులాయిగా తిరిగేవాళ్ళు వెకిలిగా నవ్వడం, వెంటపడడం, వారిని వేధించడం, సమయం దొరికితే వారిపై అత్యాచారం చేయడం వంటివి మనం చూస్తున్నాం. కనుక స్త్రీలు వస్త్రధారణ విషయంలో ఇది గమనించవలసి ఉంటుంది.

స్త్రీల నడవడియే వారి శీలాన్ని కాపాడగలదు గాని గృహ, వస్త్ర, ప్రాకారాది ఆవరణలు వారిని కాపాడజాలవని శ్రీరాముడొకచోట రామాయణంలో అంటాడు. అది సీత అగ్ని ప్రవేశ ఘట్టం. రాముడు రావణుని జయించాడు. స్నానాదులు చేయించి సీతను సర్వాలంకార నుశోభితగా చేసి శ్రీరామ దర్శనానికై తీసికొని వస్తున్నారు సుగ్రీవ హనుమదాదులు. సీతా సౌందర్యాన్ని చూచి సంతోషించాలనే ఆకాంక్షతో

వానర సైన్యం సీతకు దగ్గర దగ్గరగా వస్తున్నారు. జన సమ్మర్దం ఎక్కువైంది. ఆమెకు ముందుకు వెళ్ళడానికి కూడ వీలులేని పరిస్థితి. ఇక ఉపేక్షించ కూడదనుకొని (ఈనాడెవరైనా మహానాయకుడో, నాయకురాలో వస్తుంటే వాళ్ళను చూడడానికి జనం త్రొక్కిసలాడుతూ ఉంటే పోలీసులు 'లాఠిచార్జి' చేసినట్లుగా) సుగ్రీవాదులు వానరసైన్యంపై లాఠిచార్జి చేయించారు. ఈ దృశ్యం రాముడు స్వయంగా చూచి ఈ క్రింది మాటలు సుగ్రీవునితో అంటాడు.

న గృహాణి న వస్త్రాణి। న ప్రాకారా స్తిరస్క్రి యాః।
నే దృశా రాజసత్కారా। వృత్తమావరణం స్త్రియాం॥
వ్యసనేషు న కృచ్ఛ్రేషు। న యుద్ధేషు స్వయంవరే।
న క్రతౌ న వివాహేచ। దర్శనం దుష్యతి స్త్రియాం ॥
- రామాయణం. యుద్ధకాం. 117-26,27

స్త్రీలకు గృహ, వస్త్ర, ప్రాకారదులు ఆవరణములు - అడ్డుకావు. అంటే స్త్రీలను ఇంట మూయడం, ముసుగులతో కప్పడం, ఆకాశాన్నంటే గోడల మధ్య ఉంచడం వల్ల స్త్రీల వృత్తాన్ని - శీలాన్ని కాపాడజాలం. సద్వృత్తమే - వారి మంచి నడవడే స్త్రీలకు నిజమైన ఆవరణం, రక్షాకవచం. ఆపదలు, యుద్ధాలు, స్వయంవరం, క్రతువులు, వివాహాలు మొదలైన సందర్భాల్లో స్త్రీలు పరుల కంటబడినప్పటికి దోషంలేదు అన్నాడు రాముడు.

మనం మనశీలాన్ని ఎలా రక్షించుకోవాలో పెంపొందించుకోవాలో ఈవేదమంత్రాలు చెబుతున్నాయి. ప్రతి వ్యక్తి తన శీలరక్షణ కొరకు భగవత్ ప్రార్థన చేస్తూ యోగాదులను అభ్యసించాలని ఈ మంత్రాల్లో చెప్పబడింది.

పరిమాగ్నే దుశ్చరితాద్ బాధస్వామా సుచరితే
భజ ఉదాయుషా స్వాయుషోదస్థా మమృతాం
అను॥ -యజు. 4-23

ఓపరమేశ్వరా ! అన్ని విధాలైన దుష్టాచారాల నుండి తొలగించి ఉత్తమ శీలాచరణ మార్గంలో నన్ను నిలుపుము. సదాచారవంతుడనై జీవన్ముక్తులు - జీవించి ఉండగనే మోక్షానందాన్ని అనుభవించువారు దీర్ఘాయుష్మంతులు అయిన మహా పురుషులను అనుసరించుతూ, దీర్ఘకాలం జీవించి ఉత్తమ జీవితాన్ని పొంది, ఉత్తమ మార్గంలో స్థిరపడుదును గా !

(.... 16వ పేజి తరువాయి)
cutting heads rathen than counting them."

[*Quoted in History of freedom Movement,* **R.C.Majumdar,** vol.III.p.226]

(ఇరు పక్షాలూ దేవుడి మీద కంటే తరువాయి విడత జనాభా లెక్కల మీద దృష్టితోనే పని చేస్తున్నాయని నా నమ్మకం. తలలను లెక్కించటం ద్వారా కాకుండా నరకటం ద్వారా మన పూర్వికులు అమీతుమీ తేల్చేసిన రోజులను తలచుకుని నేను నిట్టూరుస్తున్నాను.)

మహమ్మదలీ అంతటి మహా నాయకుడే తలలు నరికిన రోజులను తలచుకుని నిట్టూర్చినప్పుడు ఉడుకు రక్తపు ఆయన సోదరులు పట్టి నిట్టూర్పాలతో ఊరుకుంటారా? తమ పూర్వీకుల ఆత్మలు గర్వపడేలా కాఫిర్ల మీద ప్రతాపం చూపకుండా మానుతారా?

అలీగారు నిట్టూర్పు విడిచిన కొద్ది నెలలకే నిజాం రాజ్యంలోని గుల్బార్గాలో తీవ్రమైన మత కల్లోలం లేచింది. ముస్లింల పట్ల ప్రత్యేక పక్షపాతంగల బ్రిటిష్ సర్కారు వారే 1924 సంవత్సరానికి వెలువరించిన ***Indian Annual Register Vol.II,*** 25, 26 పేజీల్లో చెప్పిందానిబట్టి - గుల్బర్గా నగరంలోని అన్ని హిందూదేవాలయాల మీద ముస్లిం మూకల దాడి చేశాయి. మొత్తం 15 ఆలయాల్లో దేవతా విగ్రహాలను పగలగొట్టారు. విశ్వేశ్వరాలయం మీద పడి ఆలయ రథానికి నిప్పు పెట్టారు. 1924 ఆగస్టు 14న 50 హైందవ ఆలయాలను మలినపరిచి, గర్భాలయంలోకి ప్రవేశించి విగ్రహాలను ముక్కలుచేసి, కట్టడాలను కూల్చివేశారు.

ఇది జరిగి నెల తిరక్కుండా వాయువ్య సరిహద్దు రాష్ట్రంలోని పెషావర్ దగ్గరి **కోహత్‌లో** భయానకమైన కల్లోలం చెలరేగింది. పైన ఉటంకించి **IAR 1924**లో ఇచ్చిన వివరాల ప్రకారం - ఒక ముస్లిం పత్రికలో హిందువులను కించవరిచేలా వచ్చిన కవితను దుయ్యపడుతూ సనాతన ధర్మ సభ అనే స్థానిక సంస్థ పేరు మీద ఒక హిందువు కరపత్రం వేశాడు. అందులో కొన్ని అనభ్యమైన, అభ్యంతకరమైన పదాలు ఉన్నాయి. దానిపై మహమ్మదీయులు మండిపడ్డారు. అది గ్రహించి, హిందూ పెద్దలు కొందరు కూడి జరిగిన తప్పిదానికి మహమ్మదీయులకు క్షమాపణ తెలిపారు. అయినా ముస్లింలు శానితించలేదు. అధికారులను కలిసి గట్టి చర్య తీసుకోవాలన్నారు. దానిపై కరపత్రం వేసిన వాడిని అరెస్టు చేసి నాలుగు రోజుల తరువాత జెయిలుమీద విడిచిపెట్టారు. దాంతో ముస్లింలు భగ్గుమని హిందూ జనావాసాల మీద పడ్డారు. 1924 సెప్టెంబరు 9, 10 రెండు రోజులూ హిందువుల ఇళ్లు, ఆస్తులు, దుకాణాలు లూటీ చేసి తగులబెట్టారు. చేతికి చిక్కిన ఆడవారిని ఎత్తుకుపోయి, ధారుణంగా చెరిచారు. తమను వదిలిపెట్టమని ప్రాధేయపడ్డ స్త్రీలను, పురుషులను మతం మారితే తప్ప వదిలేది లేదని షరతు పెట్టి, ఎందరినో బలవంతంగా ఇస్లాంలోకి మార్చారు. అందుకు ఇచ్ఛగించని హిందువులను టోకున ఊచకోత కోసే ప్రమాదం ఉందని గ్రహించిన అధికారులు ఆలస్యంగా కళ్లు తెరిచి ప్రాణాలతో మిగిలిన వేలాది హిందువులను మొదట కంటోన్మెంటుకు, ఆ తరువాత రావల్పిండికి తరలించారు. ఆ రెండు రోజులపాటు లేచిన అల్లర్లు, జరిగిన ఘోరాలు, లూటీలు, రాక్షస కృత్యాలు ఎంత భయానకమైనవంటే సాక్షాత్తూ మహాత్మాగాంధీయే తన అనుంగు సోదరుడు షౌకత్ ఆలీతో కదలివెళ్లి కోహత్‌లో సంయుక్త విచారణ జరిపాడు. దురదృష్టకర ఘటనలు జరిగిన మాట నిజమే కాని హిందువులు రెచ్చగొట్టటం వల్లే ముస్లింలు రెచ్చిపోయారు; కాబట్టి అసలు దోషులు హిందువులేనని షౌకత్ అలీ యథాప్రకారం తన వారిని వెనకేసుకు వచ్చాడు. సాధారణంగా ముస్లింల తప్పులు కానకపోవటంలో ఎప్పుడూ ముందుండే గాంధీగారు కూడా జరిగిన దురంతాలకు చలించిపోయి, విడిగా ఒక ప్రకటనలో ఇలా చెప్పాడు.

"*Quoted in History of Freedom Movement, R.C. Majumdar,* Vol.III, p.231]

(ఈ రోజుల్లో దేవాలయాలను ధ్వంసం చేసి, విగ్రహాలను పగులగొట్టారు. బలవంతపు మతమార్పిళ్లు అసంఖ్యాకంగా జరిగాయి... ఇస్లాంను స్వీకరించ నిరాకరించిన ఇద్దరు హిందువులను పాశవికంగా హతమార్చారు. సోకాల్డ్ మత మార్పిళ్లను ఒక ముసల్మాన్ సాక్షి ఏమని వర్ణించాడంటే - హిందువులే వచ్చి తమ శిఖలను కత్తిరించి, మెడలోని జంధ్యాలను తెంపమని అడిగారట. ఎందుకంటే వారు రక్షణ కోసం ఆశ్రయించిన ముసల్మాన్లు "హైందవ చిహ్నాలను తొలగించి, మిమ్మల్ని మీరు ముసల్మాన్లుగా ప్రకటించుకుంటే మాత్రమే మిమ్మల్ని కాపాడతామని" వారికి చెప్పారట. హిందువులు నాకు చెప్పిన దానికి విలువ ఇచ్చి చూస్తే అసలు యదార్థం ఇంతకంటే చేదుగా ఉంటుందని నా భయం.)

क्रूर भेदभावों से पीछा छुड़ाने का समय

सभ्य समाज के वाहक होने के नाते हमें अपनी बहुत सारी गलतियों को सुधारना होगा।

स्वामी अग्निवेश
सामाजिक कार्यकर्ता

आए दिन प्रथा और परंपरा के नाम पर अपराध होते रहते हैं। व्यक्ति और समाज आपस में लड़ते रहते हैं। इन अपराधों में सबसे ज्यादा जाति संबंधित अपराध हैं। ताजा उदाहरण है- तमिलनाडु में बहन को सिर्फ इसलिए विधवा कर दिया जाना कि उसका पति दलित या दूसरे शब्दों में कहें, तो सामाजिक हैसियत में लड़की से नीची जाति का था। पति-पत्नी, दोनों इंजीनियर थे, पर उनकी यह प्रगतिशीलता लड़की पक्ष वालों को रास नहीं आई और सरेआम उन्होंने लड़के की हत्या करा दी। कुछ इसे ऑनर किलिंग का नाम देते हैं, पर यह पाशविकता से अधिक कुछ नहीं। यह ऐसा पहला मामला नहीं है। आए दिन धर्म, जाति तथा लिंग को आधार बनाकर हत्याएं की जा रही हैं। अक्सर ऐसी हत्याएं तब अंजाम दी जाती हैं, जब लड़की सामाजिक रूप से तथाकथित उच्च वर्ण की हो या स्थानीय स्तर पर वह जाति वर्चस्व वाली जाति के रूप में स्थापित हो। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और पंजाब इस तरह की हत्याओं के लिए कुख्यात रहे हैं। लेकिन मीडिया दबाव, युवाओं की स्वतंत्र सोच और समाज द्वारा छोटे स्तर पर ही सही, बदलाव की स्वीकृति से हालात बदलने लगे हैं।

किसी भी कारण से अथवा दृष्टि से हत्या को उचित नहीं ठहराया जा सकता। यदि आप किसी को जीवन दे नहीं सकते, तो उसकी हत्या का अधिकार भी आपको नहीं है। हमारे बीच जो भेदभाव हैं, वे न तो ईश्वर के बनाए हुए हैं और न ही प्राकृतिक हैं। ये सारे भेदभाव हमने ही बनाए हैं। भेदभाव की यह व्यवस्था इतिहास की सबसे बड़ी गलती है। हमें यह भी समझना होगा कि धर्म, जाति, भाषा, लिंग आदि के आधार पर विभाजनों के पीछे स्वार्थ निहित था। उसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए हमें अनेक खांचों में उसी तरह बांटा गया, जैसे एक टैक्स कलेक्टर विभिन्न आय वर्ग को बांटता है। सभ्य समाज के वाहक होने के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन गलतियों को सुधारें।

वर्तमान दौर ग्लोबल गांव तथा *वसुधैव कुटुंबकम्* का है और हम विपरीत धारा में नहीं चल सकते। मेरी नजर में प्रेम विवाह तो आदिकालीन भारतीय स्वयंवर प्रथा का आधुनिक रूप है। इस तरह के विवाहों को सरकारी व सामाजिक स्तर पर बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में ऐसे विषयों पर संवाद को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ताकि भविष्य की पीढ़ियां मानसिक विकलांगता की शिकार न हों। धर्म और जाति के ठेकेदारों के बीच भी राष्ट्रीय स्तर पर खुले सेमिनार आयोजित किए जाएं, जिससे इन मुद्दों पर उनके विचार दुनिया भर में जाने जा सकें। आज के युवाओं को मोबाइल और कपड़े की आधुनिकता से आगे बढ़कर मानसिक रूप से आधुनिक बनाने की जरूरत है। समय आ गया है कि हम खुद को सभी तरह के ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों से मुक्त करें। यह पूरी दुनिया में सह-अस्तित्व वाले शांतिपूर्ण समाज की स्थापना के लिए भी जरूरी है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

Dateof Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month

आर्यजीवन 03-04-2016 Registered-Reg. No. HD/783/2015-17 RNI.No.52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Editor: **Vithal Rao Arya,** M.Sc. LL.B., Sahityaratna

Arya Prathinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-95.

Phone No 040-24753827, 66758707, Fax: 040-24557946

Annual subscription Rs. 100/- సంపాదకులు - విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన్ సభ

वैदिक समाजवाद

इसे क्यों पढ़ें ?

समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन की दो एकांगी दिशाएं रही हैं । एक धार्मिक जगत की दिशा रही है, व्यक्ति व्यक्ति में शील, सदाचार की भावना जगाकर और दूसरी दिशा है मार्क्सवादी विचारधारा की, उत्पादन सम्बन्धों को राज्य क्रान्ति से बदलकर । महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक विचार सरणि एकांगी के बदले सर्वांगीण है । इसमें व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना का बदलाव जितना जरूरी है उतना ही सामाजिक राजनैतिक हस्तक्षेप द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था लागू करना है- उत्पादन सम्बन्धो को सुधारते रहने के लिए पहली विधा सन्ध्या की है तो दूसरी यज्ञ की । व्यक्ति में ईश्वरोपासना द्वारा सौम्य आध्यात्मिक अग्नि प्रज्ज्वलित करना और साथ-साथ सामाजिक संगठन एवं संघर्ष की यज्ञाग्नि धधकाये रखना । दोनों परस्पर पूरक हों-विरोधी नही ।

हमने क्या देखा-धार्मिक जगत समाजवादी क्रान्ति को नास्तिक निन्दनीय बताकर मिटा देना चाहता है । दूसरी ओर समाजवादी क्रान्ति के प्रणेता कार्लमार्क्स ईश्वर तथा धर्म को अफीम बताकर मिटा देना चाहते हैं । महर्षि दयानन्द का वैदिक समाजवाद दोनों का सुन्दर समन्वय करता है । धर्म को मूर्तिपूजा एवं गुरुडम के पाखण्डवाद-भाग्यवाद, जातिवाद, अवतारवाद तथा साम्प्रदायिकता आदि-आदि से बचाकर सनातन सत्यादि मूल्यों की ओर लाते हैं और साथ ही शोषण एवं विषमता पर आधारित उत्पादन-वितरण की अन्यायकारी व्यवस्था को बदलने के लिए उत्पादन के साधनों पर वैयक्तिक के बदले सामाजिक, सामुदायिक स्वामित्व की प्रतिष्ठा करते हैं ।

महर्षि दयानन्द की वैचारिक विरासत को आत्मसात करने वाले वेदों के अप्रतिम विद्वान् स्वामी समर्पणानन्द पूर्वनाम (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) की विशेष भूमिका रही-उस विरासत को आगे ले जाने की। हमारी आपकी भूमिका होनी चाहिये इसकी व्यावहारिक व्याख्या कर लागू करने की, उसे सामाजिक बदलाव के लिए प्रासंगिक बनाने की।

इसलिये आइये, महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के इस क्रान्तिकारी उद्घोष को विश्व-पटल पर अंकित कर दें-

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान से भी न डरें और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे । इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें । इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक कभी न होवें।

-स्वामी अग्निवेश

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR

Editor **Vithal Rao Arya • acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691**

సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన్, ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్‌బజార్, హైదరాబాదు-95. Ph: 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com

संपादकः श्री विट्ठलराव आर्य प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रेस चिक्कडपल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।

प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-95.